पंचतन्त्र

[आचार्य विष्णुशर्मा के लोक-प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर]

○

सत्यकाम विद्यालङ्कार

○

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

१९५२

मूल्य

तीन रुपये आठ आना

युगान्तर प्रेस, मोरी गेट, दिल्ली

विषय-सूची

भूमिका

प्रत्येक देश के साहित्य में उस देश की लोक-कथाओं का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। भारत का साहित्य जितना पुराना है, उतनी ही पुरानी इसकी लोक-कथायें हैं। इन कथाओं में भी श्री विष्णुशर्मा द्वारा प्रणीत लोक-कथाओं का स्थान सबसे ऊँचा है। इन कथाओं का पांच भागों में संकलन किया गया है। इन पांचों भागों के संग्रह का नाम ही 'पञ्चतन्त्र' है।

पञ्चतन्त्र की कथायें निरुद्देश्य कथायें नहीं हैं। उनमें भारतीय नीति-शास्त्र का निचोड़ है। प्रत्येक कथा नीति के किसी भाग का अवश्य प्रतिपादन करती है। प्रत्येक कथा का निश्चित् उद्देश्य है।

ये कथायें संसार भर में प्रसिद्ध हो चुकी हैं। विश्व की बीस भाषाओं में इनके अनुवाद हो चुके हैं। सबसे पहले इनका अनुवाद छठी शताब्दी में हुआ था। तब से अब तक यूरोप की हर भाषा में इनका अनुवाद हुआ है। अभी-अभी संसार की सबसे अधिक लोकप्रिय प्रकाशन संस्था "Pocket- Book Inc.," ने भी पंचतन्त्र के अंग्रेज़ी अनुवाद का सस्ता संस्करण प्रकाशित किया है। इस अनुवाद की लाखों प्रतियां बिक चुकी हैं।

पञ्चतन्त्र में भारत के सब नीति-शास्त्रों—मनु, शुक्र और चाणक्य के नीतिवाक्यों का सार कथारूप में दिया गया है। मन्द से मन्द बुद्धि वाला भी इन कथाओं से गहन से गहन नीति की शिक्षा ले सकता है।

आज से लगभग १६० वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् सॅर विलियम जोन्स ने पञ्चतन्त्र के विषय में लिखा था—

"Their (The Hindoos') Niti-Shastra, or System of Ethics, is yet preserved, and the fables of Vishnusharma, are the most beautiful, if not the most ancient collection of apologues in the world."

अर्थात हिन्दुओं का नीति-शास्त्र अभी तक सुरक्षित है और विष्णु

शर्मा की कहानियाँ संसार की सबसे पुरानी नहीं तो सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ अवश्य हैं।

प्रोफ़ेसर मूरले ने पञ्चतन्त्र व हितोपदेश की भूमिका लिखते हुए लिखा था--

"It comes to us from a far place and time, as a manual of worldly wisdom, inspired throughout by the religion of its place and time...............every fable of Panchtantra can still be applied to human character; every maxim quoted from the wisemen of two or three thousand years ago, when parted from the local accidents of form, might find its time for being quoted now in church or at home."

"सारांश यह कि पंचतन्त्र के नीति-वाक्यों में सांसारिक ज्ञान का जो कोष है, वह समय और स्थान की दूरी होने पर भी सदैव उपयोगी है। पंचतन्त्र की प्रत्येक कहानी आज भी मानव-चरित्र का सच्चा चित्रण करती है और उसमें लिखे गये दो-तीन हज़ार वर्ष के पूर्व के नीतिवाक्य आज भी मानवमात्र का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं; आज भी उनका प्रवचन घरों व गिरजाघरों में हो सकता है।"

अन्य विदेशी विद्वानों ने भी पंचतन्त्र की कथाओं और उसके नीतिवाक्यों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। फिर भी हमारे देश के लाखों शिक्षित व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने 'पंचतंत्र' का नाम नहीं सुना है।

अपने साहित्य के प्रति यह उदासीनता अब असह्य है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद अपने साहित्य को उचित आदर देना हमारा कर्त्तव्य हो गया है। पंचतन्त्र को भारतीय साहित्य-मन्दिर की प्रथम सीढ़ी कहा जा सकता है।

यह पुस्तक उसी पंचतन्त्र का सरल हिन्दी रूपान्तर है। इस पुस्तक में नीति-भाग को साररूप से कहकर कथा-भाग को मुख्यता दी गई है। कुछ कहानियों में विक्षेप होने के कारण उन्हें छोड़ भी दिया गया है।

—सत्यकाम विद्यालङ्कार

पञ्चतन्त्र

आमुख

दक्षिण देश के एक प्रान्त में महिलारोप्य नाम का नगर था। वहां एक महादानी, प्रतापी राजा अमरशक्ति रहता था। उसके अनन्त धन था; रत्नों की अपार राशि थी; किन्तु उसके पुत्र बिल्कुल जड़बुद्धि थे। तीनों पुत्रों—बहुशक्ति, उग्रशक्ति, अनन्तशक्ति—के होते हुए भी वह सुखी न था। तीनों अविनीत, उच्छृङ्खल और मूर्ख थे।

राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर पुत्रों की शिक्षा के संबंध में अपनी चिन्ता प्रकट की। राजा के राज्य में उस समय ५०० वृत्ति-भोगी शिक्षक थे। उनमें से एक भी ऐसा नहीं था जो राजपुत्रों को उचित शिक्षा दे सकता। अन्त में राजा की चिन्ता को

दूर करने के लिए सुमति नाम के मन्त्री ने सकलशास्त्र-पारंगत आचार्य विष्णुशर्मा को बुलाकर राजपुत्रों का शिक्षक नियुक्त करने की सलाह दी ।

राजा ने विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा कि यदि आप इन पुत्रों को शीघ्र ही राजनीतिज्ञ बनादेंगे तो मैं आपको १०० गांव इनाम में दूँगा । विष्णुशर्मा ने हँसकर उत्तर दिया—"महाराज ! मैं अपनी विद्या को बेचता नहीं हूँ । इनाम की मुझे इच्छा नहीं है । आपने आदर से बुलाकर आदेश दिया है इसलिये ६ महीने में ही मैं आपके पुत्रों को राजनीतिज्ञ बनादूंगा। यदि मैं इसमें सफल न हुआ तो अपना नाम बदल डालूंगा ।"

आचार्य का आश्वासन पाकर राजा ने अपने पुत्रों का शिक्षण-भार उनपर डाल दिया और निश्चिन्त हो गया। विष्णुशर्मा ने उनकी शिक्षा के लिये अनेक कथायें बनाईं । उन कथाओं द्वारा ही उन्हें राजनीति और व्यवहार-नीति की शिक्षा दी । उन कथाओं के संग्रह का नाम ही 'पञ्चतन्त्र' है । पांच प्रकरणों में उनका विभाग होने से उसे 'पञ्चतन्त्र' नाम दिया गया ।

राजपुत्र इन कथाओं को सुनकर ६ महीने में ही पूरे राज-नीतिज्ञ बन गये । उन पांच प्रकरणों के नाम हैं : १—मित्रभेद, २—मित्रसम्प्राप्ति, ३—काकोलूकीयम्, ४—लब्धप्रणाशम् और ५—अपरीक्षितकारकम् । प्रस्तुत पुस्तक में पांचों प्रकरण दिये गये हैं ।

प्रथम तन्त्र—

मित्रभेद

इस तन्त्र में·—

महिलारोप्य नाम के नगर में वर्धमान नाम का एक वणिक्-पुत्र रहता था। उसने धर्मयुक्त रीति से व्यापार में पर्याप्त धन पैदा किया था; किन्तु उतने से सन्तोष नहीं होता था; और भी अधिक धन कमाने की इच्छा थी। छः उपायों से ही धनोपार्जन किया जाता है—भिक्षा, राजसेवा, खेती, विद्या, सूद और व्यापार से। इनमें से व्यापार का साधन ही सर्वश्रेष्ठ है। व्यापार के भी अनेक प्रकार हैं। उनमें से सबसे अच्छा यही है कि परदेस से उत्तम वस्तुओं का संग्रह करके स्वदेश में उन्हें बेचा जाय। यही सोचकर वर्धमान ने अपने नगर से बाहिर जाने का संकल्प किया। मथुरा जाने वाले मार्ग के लिए उसने अपना रथ तैयार करवाया। रथ में दो सुन्दर, सुदृढ़ बैल लगवाए। उनके नाम थे—संजीवक और नन्दक।

वर्धमान का रथ जब यमुना के किनारे पहुँचा तो संजीवक नाम का बैल नदी-तट की दलदल में फँस गया। वहाँ से निकलने की चेष्टा में उसका एक पैर भी टूट गया। वर्धमान को यह देख कर बड़ा दुःख हुआ। तीन रात उसने बैल के स्वस्थ होने की प्रतीक्षा की। बाद में उसके सारथि ने कहा कि "इस वन में अनेक हिंसक जन्तु रहते हैं। यहाँ उनसे बचाव का कोई उपाय नहीं है। संजीवक के अच्छा होने में बहुत दिन लग जायंगे। इतने दिन यहाँ रहकर प्राणों का संकट नहीं उठाया जा सकता। इस बैल के लिये अपने जीवन को मृत्यु के मुख में क्यों डालते हैं ?"

तब वर्धमान ने संजीवक की रखवाली के लिए रक्षक रखकर आगे प्रस्थान किया। रक्षकों ने भी जब देखा कि जंगल अनेक शेर-बाघ-चीतों से भरा पड़ा है तो वे भी दो-एक दिन बाद ही वहाँ से प्राण बचाकर भागे और वर्धमान के सामने यह झूठ बोल दिया "स्वामी! संजीवक तो मर गया। हमने उसका दाह-संस्कार कर दिया।" वर्धमान यह सुनकर बड़ा दुःखी हुआ, किन्तु अब कोई उपाय न था।

इधर, संजीवक यमुना-तट की शीतल वायु के सेवन से कुछ स्वस्थ हो गया था। किनारे की दूब का अग्रभाग पशुओं के लिये बहुत बलदायी होता है। उसे निरन्तर खाने के बाद वह खूब मांसल और हृष्ट-पुष्ट भी हो गया। दिन भर नदी के किनारों को सींगों से पाटना और मदमत्त होकर गरजते हुए किनारों की झाड़ियों में सींग उलझाकर खेलना ही उसका काम था।

एक दिन उसी यमुना-तट पर पिंगलक नाम का शेर पानी पीने आया। वहाँ उसने दूर से ही संजीवक की गम्भीर हुंकार सुनी। उसे सुनकर वह भयभीत-सा हो सिमट कर झाड़ियों में जा छिपा।

शेर के साथ दो गीदड़ भी थे—करटक और दमनक। ये दोनों सदा शेर के पीछे-पीछे रहते थे। उन्होंने जब अपने स्वामी को भयभीत देखा तो आश्चर्य में डूब गए। वन के स्वामी का इस तरह भयातुर होना सचमुच बड़े अचम्भे की बात थी। आज तक पिंगलक कभी इस तरह भयभीत नहीं हुआ था। दमनक ने अपने साथी गीदड़ को कहा—"करटक! हमारा स्वामी वन का राजा है। सब पशु उससे डरते हैं। आज वही इस तरह सिमटकर डरा-सा बैठा है। प्यासा होकर भी वह पानी पीने के लिए यमुना-तट तक जाकर लौट आया; इस डर का कारण क्या है?"

करटक ने उत्तर दिया—"दमनक! कारण कुछ भी हो, हमें क्या? दूसरों के काम में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं। जो ऐसा करता है वह उसी बन्दर की तरह तड़प-तड़प कर मरता है, जिसने दूसरे के काम में कौतूहलवश व्यर्थ ही हस्तक्षेप किया था।"

दमनक ने पूछा—"यह क्या बात कही तुमने?"

करटक ने कहा—"सुनो—

१.

अनधिकार चेष्टा

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्त्तुमिच्छति ।
स एव निधनं याति कीलोत्पाटीव वानरः ॥

• • • •

दूसरे के काम में हस्तक्षेप करना मूर्खता है ।

• • • •

एक गांव के पास, जंगल की सीमा पर, मन्दिर बन रहा था । वहाँ के कारीगर दोपहर के समय भोजन के लिये गांव में आ जाते थे ।

एक दिन जब वे गांव में आये हुए थे तो बन्दरों का एक दल इधर-उधर घूमता हुआ वहीं आ गया जहाँ कारीगरों का काम चल रहा था । कारीगर उस समय वहाँ नहीं थे । बन्दरों ने इधर-उधर उछलना और खेलना शुरू कर दिया ।

वहीं एक कारीगर शहतीर को आधा चीरने के बाद उसमें कील फंसा कर गया था । एक बन्दर को यह कौतूहल हुआ कि यह कील यहां क्यों फंसी है । तब आधे चिरे हुए शहतीर पर बैठकर वह अपने दोनों हाथों से कील को बाहिर खींचने लगा । कील बहुत मज़बूती से वहां गड़ी थी—इसलिये बाहिर नहीं

निकली। लेकिन बन्दर भी हठी था, वह पूरे बल से कील निकालने में जूझ .या।

अन्त में भारी झटके के साथ वह कील निकल आई—किन्तु उसके निकलते ही बन्दर का पिछला भाग शहतीर के चिरे हुए दो भागों के बीच में आकर पिचक गया। अभागा बन्दर वहीं तड़प-तड़प कर मर गया।

× × ×

इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमें दूसरों के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। हमें शेर के भोजन का अवशेष तो मिल ही जाता है, अन्य बातों की चिन्ता क्यों करें ?"

दमनक ने कहा—"करटक ! तुझे तो बस अपने अवशिष्ट आहार की ही चिन्ता रहती है। स्वामी के हित की तो तुझे परवाह ही नहीं।"

करटक—"हमारी हित-चिन्ता से क्या होता है ? हमारी गिनती उसके प्रधान सहायकों में तो है ही नहीं। बिना पूछे सम्मति देना मूर्खता है। इससे अपमान के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता।"

दमनक—"प्रधान-अप्रधान की बात रहने दे। जो भी स्वामी की अच्छी सेवा करेगा वह प्रधान बन जायगा। जो सेवा नहीं करेगा, वह प्रधान-पद से भी गिर जायगा। राजा, स्त्री और लता का यही नियम है कि वे पास रहने वाले को ही अपनाते हैं।"

करटक—"तब क्या किया जाय ? अपना अभिप्राय स्पष्ट-स्पष्ट कह दे।"

दमनक—"आज हमारा स्वामी बहुत भयभीत है। उसे भय का कारण बताकर सन्धि-विग्रह-आसन-संश्रय-द्वैधीभाव आदि उपायों से हम भय-निवारण की सलाह देंगे।"

करटक—"तुझे कैसे मालूम कि स्वामी भयभीत है?"

दमनक—"यह जानना कोई कठिन काम नहीं है। मन के भाव छिपे नहीं रहते। चेहरे से, इशारों से, चेष्टा से, भाषण-शैली से, आंखों की भ्रूभंगी से वे सबके सामने आ जाते हैं। आज हमारा स्वामी भयभीत है। उसके भय को दूर करके हम उसे अपने वश में कर सकते हैं। तब वह हमें अपना प्रधान सचिव बना लेगा।"

करटक—"तू राज-सेवा के नियमों से अनभिज्ञ है; स्वामी को वश में कैसे करेगा?"

दमनक—"मैंने तो बचपन में अपने पिता के संग खेलते २ राज-सेवा का पाठ पढ़ लिया था। राजसेवा स्वयं एक कला है। मैं उस कला में प्रवीण हूँ।"

यह कह कर दमनक ने राज-सेवा के नियमों का निर्देश किया। राजा को सन्तुष्ट करने और उसकी दृष्टि में सम्मान पाने के अनेक उपाय भी बतलाये। करटक दमनक की चतुराई देखकर दंग रह गया। उसने भी उसकी बात मान ली, और दोनों शेर की राज-सभा की ओर चल दिये।

दमनक को आता देखकर पिंगलक द्वारपाल से बोला—"हमारे भूतपूर्व मन्त्री का पुत्र दमनक आ रहा है, उसे हमारे पास बेरोक आने दो।"

दमनक राजसभा में आकर पिंगलक को प्रणाम करके अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गया। पिंगलक ने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठा कर दमनक से कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—"कहो दमनक! सब कुशल तो है? बहुत दिनों बाद आए? क्या कोई विशेष प्रयोजन है?"

दमनक—"विशेष प्रयोजन तो कोई भी नहीं। फिर भी सेवक को स्वामी के हित की बात कहने के लिये स्वयं आना चाहिये। राजा के पास उत्तम, मध्यम, अधम सभी प्रकार के सेवक हैं। राजा के लिये सभी का प्रयोजन है। समय पर तिनके का भी सहारा लेना पड़ता है, सेवक की तो बात ही क्या है?

"आपने बहुत दिन बाद आने का उपालंभ दिया है। उसका भी कारण है। जहाँ कांच की जगह मणि और मणि के स्थान पर कांच जड़ा जाय वहां अच्छे सेवक नहीं ठहरते। जहाँ पारखी नहीं, वहां रत्नों का मूल्य नहीं लगता। स्वामी और सेवक परस्पराश्रयी होते हैं। उन्हें एक दूसरे का सम्मान करना चाहिये। राजा तो सन्तुष्ट होकर सेवक को केवल सम्मान देते हैं—किन्तु सेवक सन्तुष्ट होकर राजा के लिये प्राणों की बलि दे देता है।"

पिंगलक दमनक की बातों से प्रसन्न हो कर बोला—"तू तो हमारे भूतपूर्व मन्त्री का पुत्र है, इसलिये तुझे जो कहना है निश्चिन्त होकर कह दे।"

दमनक—"मैं स्वामी से कुछ एकान्त में कहना चाहता हूँ।

चार कानों में ही भेद की बात सुरक्षित रह सकती है, छः कानों में वह भेद गुप्त नहीं रह सकता ।"

तब पिंगलक ने इशारे से बाघ, रीछ, चीते आदि सब जानवरों को सभा से बाहिर भेज दिया ।

सभा में एकान्त होने के बाद दमनक ने शेर के कानों के पास जाकर प्रश्न किया—

दमनक—"स्वामी ! जब आप पानी पीने गये थे तब पानी पिये बिना लौट क्यों आये थे ? इसका कारण क्या था ?"

पिंगलक ने ज़रा सूखी हँसी हंसते हुए उत्तर दिया :—"कुछ भी नहीं ।"

दमनक—"देव ! यदि वह बात कहने योग्य नहीं है तो मत कहिये । सभी बातें कहने योग्य नहीं होतीं । कुछ बातें अपनी स्त्री से भी छिपाने योग्य होती हैं; कुछ पुत्रों से भी छिपा ली जाती हैं। बहुत अनुरोध पर भी ये बातें नहीं कही जातीं ।"

पिंगलक ने सोचा—'यह दमनक बुद्धिमान दिखता है; क्यों न इस से अपने मन की बात कह दी जाय ।' यह सोच वह कहने लगा—

पिंगलक—"दमनक ! दूर से जो यह हुंकार की आवाज़ आ रही है, उसे तुम सुनते हो ?"

दमनक—"सुनता हूँ स्वामी ! उस से क्या हुआ ?"

पिंगलक—"दमनक ! मैं इस वन से चले जाने की बात सोच रहा हूँ ।"

दमनक—"किस लिये भगवन्!"

पिंगलक—"इसलिये कि इस वन में यह कोई दूसरा बलशाली जानवर आ गया है; उसी का यह भयंकर घोर गर्जन है। अपनी आवाज़ की तरह वह स्वयं भी इतना ही भयंकर होगा। उसका पराक्रम भी इतना ही भयानक होगा।"

दमनक—"स्वामी! ऊँचे शब्द मात्र से भय करना युक्तियुक्त नहीं है। ऊँचे शब्द तो अनेक प्रकार के होते हैं। भेरी, मृदंग, पटह, शंख, काहल आदि अनेक वाद्य हैं जिनकी आवाज़ बहुत ऊँची होती है। उनसे कौन डरता है? यह जंगल आपके पूर्वजों के समय का है। वह यहीं राज्य करते रहे हैं। उसे इस तरह छोड़कर जाना ठीक नहीं। ढोल भी कितनी ज़ोर से बजता है। गोमायु को उसके अन्दर जाकर ही पता लगा कि वह अन्दर से खाली था।"

पिंगलक ने कहा—"गोमायु की कहानी कैसे है?"

दमनक ने तब कहा—"ध्यान देकर सुनिए—

२.

ढोल की पोल

शब्दमात्रान्न भेतव्यम्

. . .

शब्द-मात्र से डरना उचित नहीं

. . .

गोमायु नाम का गीदड़ एक बार भूखा-प्यासा जङ्गल में घूम रहा था। घूमते-घूमते वह एक युद्ध-भूमि में पहुँच गया। वहाँ दो सेनाओं में युद्ध होकर शान्त हो गया था। किन्तु, एक ढोल अभी तक वहीं पड़ा था। उस ढोल पर इधर-उधर लगी बेलों की शाखायें हवा से हिलती हुईं प्रहार करती थीं। उस प्रहार से ढोल में बड़ी ज़ोर की आवाज़ होती थी।

आवाज़ सुनकर गोमायु बहुत डर गया। उसने सोचा ': इससे पूर्व कि यह भयानक शब्द वाला जानवर मुझे देखे, मैं यहाँ से भाग जाता हूँ।' किन्तु, दूसरे ही क्षण उसे याद आया कि भय या आनन्द के उद्वेग में हमें सहसा कोई काम नहीं करना चाहिये। पहिले भय के कारण की खोज करनी चाहिये। यह सोचकर वह धीरे-धीरे उधर चल पड़ा, जिधर से शब्द आ रहा था। शब्द के बहुत निकट पहुँचा तो ढोल को देखा। ढोल पर बेलों की

शाखायें चोट कर रही थीं। गोमायु ने स्वयं भी उसपर हाथ मारने शुरू कर दिये। ढोल और भी ज़ोर से बज उठा।

गीदड़ ने सोचा : 'यह जानवर तो बहुत सीधा-सादा मालूम होता है। इसका शरीर भी बहुत बड़ा है। मांसल भी है। इसे खाने से कई दिनों की भूख मिट जायगी। इसमें चर्बी, मांस, रक्त खूब होगा।' यह सोचकर उसने ढोल के ऊपर लगे हुए चमड़े में दांत गड़ा दिये। चमड़ा बहुत कठोर था, गीदड़ के दो दांत टूट गये। बड़ी कठिनाई से ढोल में एक छिद्र हुआ। उस छिद्र को चौड़ा करके गोमायु गीदड़ जब नगाड़े में घुसा तो यह देखकर बड़ा निराश हुआ कि वह तो अन्दर से बिल्कुल खाली है; उसमें रक्त, मांस, मज्जा थे ही नहीं।

× × ×

इसीलिये मैं कहता हूँ कि शब्द-मात्र से डरना उचित नहीं है।"

पिंगलक ने कहा—"मेरे सभी साथी उस आवाज़ से डर कर जंगल से भागने की योजना बना रहे हैं। इन्हें किस तरह धीरज बंधाऊँ ?"

दमनक—"इसमें इनका क्या दोष ? सेवक तो स्वामी का ही अनुकरण करते हैं। जैसा स्वामी होगा, वैसे ही उसके सेवक होंगे। यही संसार की रीति है। आप कुछ काल धीरज रखें, साहस से काम लें। मैं शीघ्र ही इस शब्द का स्वरूप देखकर आऊँगा। "

पिंगलक—"तू वहां जाने का साहस कैसे करेगा ?"

दमनक—"स्वामी के आदेश का पालन करना ही सेवक का काम है। स्वामी की आज्ञा हो तो आग में कूद पड़ूँ, समुद्र में छलांग मार दूं।"

पिंगलक—"दमनक ! जाओ, इस शब्द का पता लगाओ। तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो, यही मेरा आशीर्वाद है।"

तब दमनक पिंगलक को प्रणाम करके संजीवक के शब्द की ध्वनि का लक्ष्य बांध कर उसी दिशा में चल दिया।

दमनक के जाने के बाद पिंगलक ने सोचा—'यह बात अच्छी नहीं हुई कि मैंने दमनक का विश्वास करके उसके सामने अपने मन का भेद खोल दिया। कहीं वह उसका लाभ उठाकर दूसरे पक्ष से मिल जाय और उसे मुझ पर आक्रमण करने के लिये उकसा दे तो बुरा होगा। मुझे दमनक का भरोसा नहीं करना चाहिये था। वह पदच्युत है, उसका पिता मेरा प्रधानमन्त्री था। एक बार सम्मानित होकर अपमानित हुए सेवक विश्वासपात्र नहीं होते। वे इस अपमान का बदला लेने का अवसर खोजते रहते हैं। इसलिये किसी दूसरे स्थान पर जाकर ही दमनक की प्रतीक्षा करता हूँ।'

यह सोचकर वह दमनक की राह देखता हुआ दूसरे स्थान पर अकेला ही चला गया।

❀ ❀ ❀

दमनक जब संजीवक के शब्द का अनुकरण करता हुआ उसके पास पहुँचा तो यह देखकर उसे प्रसन्नता हुई कि वह कोई

भयंकर जानवर नहीं, बल्कि सीधा-सादा बैल है। उसने सोचा—'अब मैं सन्धि-विग्रह की कूटनीति से पिंगलक को अवश्य अपने वश में कर लूँगा। आपत्तिग्रस्त राजा ही मन्त्रियों के वश में होते हैं।'

यह सोचकर वह पिंगलक से मिलने के लिये वापिस चल दिया। पिंगलक ने उसे अकेले आता देखा तो उसके दिल में धीरज बँधा। उसने कहा:—"दमनक! वह जानवर देखा तुमने?"

दमनक—"आप की दया से देख लिया, स्वामी!"

पिंगलक—"सचमुच!"

दमनक—"स्वामी के सामने असत्य नहीं बोल सकता मैं। आप की तो मैं देवता की तरह पूजा करता हूँ, आप से झूठ कैसे बोल सकूँगा?"

पिंगलक—"संभव है तूने देखा हो, इसमें विस्मय क्या? और इसमें भी आश्चर्य नहीं कि उसने तुझे नहीं मारा। महान् व्यक्ति महान् शत्रु पर ही अपना पराक्रम दिखाते हैं; दीन और तुच्छ जन पर नहीं। आंधी का झोंका बड़े वृक्षों को ही गिराता है, घासपात को नहीं।"

दमनक—"मैं दीन ही सही; किन्तु आप की आज्ञा हो तो मैं उस महान् पशु को भी आप का दीन सेवक बना दूँ।"

पिंगलक ने लम्बी सांस खींचते हुए कहा—"यह कैसे होगा दमनक?"

दमनक—"बुद्धि के बल से सब कुछ हो सकता है स्वामी! जो काम बड़े-बड़े हथियार नहीं कर सकते, वह छोटी-सी बुद्धि कर देती है।"

पिंगलक—"यदि यही बात है तो मैं तुझे आज से अपना प्रधान-मन्त्री बनाता हूँ। आज से मेरे राज्य के इनाम बाँटने या दण्ड देने के काम तेरे ही अधीन होंगे।"

❀ ❀ ❀

पिंगलक से यह आश्वासन पाने के बाद दमनक संजीवक के पास जाकर अकड़ता हुआ बोला—"अरे दुष्ट बैल! मेरा स्वामी पिंगलक तुझे बुला रहा है। तू यहाँ नदी के किनारे व्यर्थ ही हुंकार क्यों करता रहता है ?"

संजीवक—"यह पिंगलक कौन है ?"

दमनक—"अरे! पिंगलक को नहीं जानता ? थोड़ी देर ठहर तो उसकी शक्ति को जान जायगा। जंगल के सब जानवरों का स्वामी पिंगलक शेर वहाँ वृक्ष की छाया में बैठा है।"

यह सुनकर संजीवक के प्राण सूख गये। दमनक के सामने गिड़गिड़ाता हुआ वह बोला—"मित्र! तू सज्जन प्रतीत होता है। यदि तू मुझे वहाँ ले जाना चाहता है तो पहले स्वामी से मेरे लिये अभय वचन ले ले। तभी मैं तेरे साथ चलूँगा।"

दमनक—"तेरा कहना सच है मित्र! तू यहीं बैठ, मैं अभय वचन लेकर अभी आता हूँ।"

तब, दमनक पिंगलक के पास जाकर बोला—"स्वामी! वह कोई साधारण जीव नहीं है। वह तो भगवान का वाहन बैल है। मेरे पूछने पर उसने मुझे बतलाया कि उसे भगवान ने प्रसन्न होकर यमुना-तट की हरी-हरी घास खाने को यहाँ भेजा है। वह

तो कहता है कि भगवान ने उसे यह सारा वन खेलने और चरने को सौंप दिया है।"

पिंगलक—"सच कहते हो दमनक! भगवान के आशीर्वाद के बिना कौन बैल है जो यहाँ इस वन में इतनी निःशंकता से घूम सके। फिर तूने क्या उत्तर दिया, दमनक!"

दमनक—"मैंने उसे कहा कि इस वन में तो चंडिकावाहन रूप शेर पिंगलक पहले ही रहता है। तुम भी उसके अतिथि बन कर रहो। उसके साथ आनन्द से विचरण करो। वह तुम्हारा स्वागत करेगा।"

पिंगलक—"फिर, उसने क्या कहा?"

दमनक—"उसने यह बात मान ली। और कहा कि अपने स्वामी से अभय वचन ले आओ, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। अब स्वामी जैसा चाहें वैसा करूँगा।"

दमनक की बात सुनकर पिंगलक बहुत प्रसन्न हुआ, बोला—"बहुत अच्छा कहा दमनक, तूने बहुत अच्छा कहा। मेरे दिल की बात कहदी। अब, उसे अभय वचन देकर शीघ्र मेरे पास ले आओ।"

दमनक संजीवक के पास जाते-जाते सोचने लगा—"स्वामी आज बहुत प्रसन्न हैं। बातों ही बातों में मैंने उन्हें प्रसन्न कर लिया। आज मुझ से अधिक धन्यभाग्य कोई नहीं।'

संजीवक के पास जाकर दमनक सविनय बोला—"मित्र! मेरे स्वामी ने तुम्हें अभय वचन दे दिया है। अब मेरे साथ

आ जाओ। किन्तु, राजप्रासाद में जाकर कहीं अभिमानी न हो जाना। मेरे साथ मित्रता का सम्बन्ध निभाना। मैं भी तुम्हारे संकेत से राज्य चलाऊँगा। हम दोनों मिलकर राज्यलक्ष्मी का भोग करेंगे।"

दोनों मिलकर पिंगलक के पास गए। पिंगलक ने नखविभूषित दक्षिण ओर का हाथ उठाकर पिंगलक का स्वागत किया और कहा—"कल्याण हो आप का! आप इस निर्जन वन में कैसे आ गये!"

संजीवक ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। पिंगलक ने सब सुनकर कहा—"मित्र! डरो मत। इस वन में मेरा ही राज्य है। मेरी भुजाओं से रक्षित वन में तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। फिर भी, अच्छा यही है कि तुम हर समय मेरे साथ रहो। वन में अनेक भयंकर पशु रहते हैं। बड़े-बड़े हिंसक वनचरों को भी डरकर रहना पड़ता है; तुम तो फिर हो ही निरामिष-भोजी।"

❀ ❀ ❀

शेर और बैल की इस मैत्री के बाद कुछ दिन तो वन का शासन करटक-दमनक ही करते रहे; किन्तु बाद में संजीवक के संपर्क से पिंगलक भी नगर की सभ्यता से परिचित होता गया। संजीवक को सभ्य जीव मान कर वह उसका सम्मान करने लगा और स्वयं भी संजीवक की तरह सुसभ्य होने का यत्न करने लगा। थोड़े दिन बाद संजीवक का प्रभाव पिंगलक पर इतना

बढ़ गया कि पिंगलक ने अन्य सब वनचारी पशुओं की उपेक्षा शुरू कर दी। प्रत्येक प्रश्न पर पिंगलक संजीवक के साथ ही एकान्त में मन्त्रणा किया करता। करटक-दमनक बीच में दख़ल नहीं दे पाते थे। संजीवक की इस मानवृद्धि से दमनक के मन में आग लग गई। वह संजीवक की इस वृद्धि को सहन नहीं कर सका।

शेर व बैल की इस मैत्री का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि शेर ने शिकार के काम में ढील कर दी। करटक-दमनक शेर का उच्छिष्ट मांस खाकर ही जीते थे। अब वह उच्छिष्ट मांस बहुत कम हो गया था। करटक-दमनक इससे भूखे रहने लगे। तब वे दोनों इसका उपाय सोचने लगे।

दमनक बोला—'करटक भाई! यह तो अनर्थ हो गया। शेर की दृष्टि में महत्त्व पाने के लिये ही तो मैंने यह प्रपंच रचा था। इसी लक्ष्य से मैंने संजीवक को शेर से मिलाया था। अब उसका परिणाम सर्वथा विपरीत ही हो रहा है। संजीवक को पाकर स्वामी ने हमें बिल्कुल भुला दिया है। हम ही क्या, सारे वनचरों को उसने भुला दिया है। यहाँ तक कि अपना काम भी वह भूल गया है।

करटक ने कहा—"किन्तु, इसमें भूल किस की है? तूने ही दोनों की भेंट कराई थी। अब तू ही कोई उपाय कर, जिससे इन दोनों में बैर हो जाय।"

दमनक—"जिसने मेल कराया है. वह फूट भी डाल सकता है।"

करटक—"यदि इनमें से किसी को भी यह ज्ञान हो गया कि तू फूट कराना चाहता है तो तेरा कल्याण नहीं।"

दमनक—"मैं इतना कच्चा खिलाड़ी नहीं हूँ। सब दाव-पेच जानता हूँ।"

करटक—"मुझे तो फिर भी भय लगता है। संजीवक बुद्धिमान है, वह ऐसा नहीं होने देगा।"

दमनक—"भाई! मेरा बुद्धि-कौशल सब करा देगा। बुद्धि के बल से असंभव भी संभव हो जाता है। जो काम शस्त्रास्त्र से नहीं हो पाता, वह बुद्धि से हो जाता है: जैसे सोने की माला से काक-पत्नी ने काले सांप का वध किया था।

करटक ने पूछा—"वह कैसे?"

दमनक ने तब 'साँप और कौवे की कहानी' सुनाई।

३.
अक्ल बड़ी या भैंस

उपायेन हि यत्कुर्यात्तन्न शक्यं पराक्रमैः ।

. . . .

उपाय द्वारा जो काम हो जाता है
वह पराक्रम से नहीं हो पाता ।

. . . .

एक स्थान पर वटवृक्ष की एक बड़ी खोल में कौवा-कौवी रहते थे। उसी खोल के पास एक काला सांप भी रहता था। वह सांप कौवी के नन्हे-नन्हे बच्चों को उनके पंख निकलने से पहिले ही खा जाता था। दोनों इससे बहुत दुःखी थे। अन्त में दोनों ने अपनी दुःखभरी कथा उस वृक्ष के नीचे रहने वाले एक गीदड़ को सुनाई, और उससे यह भी पूछा कि अब क्या किया जाय। सांप वाले घर में रहना प्राण-घातक है।

गीदड़ ने कहा—"इसका उपाय चतुराई से ही हो सकता है। शत्रु पर उपाय द्वारा विजय पाना अधिक आसान है। एक बार एक बगुला बहुत-सी उत्तम-मध्यम-अधम मच्छलियों को खाकर प्रलोभ-वश एक कर्कट के हाथों उपाय से ही मारा गया था।"

दोनों ने पूछा—"कैसे ?"

तब गीदड़ ने कहा—"सुनो—

४.

बगुला भगत

उपायेन जयो यादृग्रिपोस्तादृङ् न हेतिभिः ।
. . . .

उपाय से शत्रु को जीतो, हथियारों से नहीं ।
. . . .

एक जंगल में बहुत-सी मछलियों से भरा एक तालाब था। एक बगुला वहाँ प्रति-दिन मछलियों को खाने के लिये आता था, किन्तु वृद्ध होने के कारण मछलियों को पकड़ नहीं पाता था। इस तरह भूख से व्याकुल हुआ-हुआ वह एक दिन अपने बुढ़ापे पर रो रहा था कि एक केकड़ा उधर आया। उसने बगुले को निरन्तर आँसू बहाते देखा तो कहा—"मामा! आज तुम पहिले की तरह आनन्द से भोजन नहीं कर रहे, और आँखों से आँसू बहाते हुए बैठे हो; इसका क्या कारण है?"

बगुले ने कहा—"मित्र! तुम ठीक कहते हो। मुझे मछलियों को भोजन बनाने से विरक्ति हो चुकी है। आज-कल अनशन कर रहा हूँ। इसी से मैं पास में आई मछलियों को भी नहीं पकड़ता।"

केकड़े ने यह सुनकर पूछा—"मामा! इस वैराग्य का कारण क्या है?"

बगुला—"मित्र! बात यह है कि मैंने इस तालाब में जन्म लिया, बचपन से यहीं रहा हूँ और यहीं मेरी उम्र गुज़री है। इस तालाब और तालाब-वासियों से मेरा प्रेम है। किन्तु मैंने सुना है कि अब बड़ा भारी अकाल पड़ने वाला है। १२ वर्षों तक वृष्टि नहीं होगी।"

केकड़ा—"किससे सुना है?"

बगुला—"एक ज्योतिषी से सुना है। यह शनिश्चर जब शकटाकार रोहिणी तारकमण्डल को खंडित करके शुक्र के साथ एक राशि में जायगा, तब १२ वर्ष तक वर्षा नहीं होगी। पृथ्वी पर पाप फैल जायगा। माता-पिता अपनी सन्तान का भक्षण करने लगेंगे। इस तालाब में पहले ही पानी कम है। यह बहुत जल्दी सूख जायगा। इसके सूखने पर मेरे सब बचपन के साथी, जिनके बीच मैं इतना बड़ा हुआ हूँ, मर जायंगे। उनके वियोग-दुःख की कल्पना से ही मैं इतना रो रहा हूँ। और इसीलिए मैंने अनशन किया है। दूसरे जलाशयों के सभी जल-चर अपने छोटे-छोटे तालाब छोड़कर बड़ी-बड़ी झीलों में चले जा रहे हैं। बड़े-बड़े जलचर तो स्वयं ही चले जाते हैं, छोटों के लिए ही कठिनाई है। दुर्भाग्य से इस जलाशय के जलचर बिल्कुल निश्चिन्त बैठे हैं—मानो, कुछ होने वाला ही नहीं है। उनके लिए ही मैं रो रहा हूँ; उनका वंशनाश हो जायगा।"

केकड़े ने बगुले के मुख से यह बात सुनकर अन्य सब मछलियों को भी भावी दुर्घटना की सूचना दे दी। सूचना पाकर जलाशय के सभी जलचरों—मछलियों, कछुए आदि ने बगुले को घेरकर पूछना शुरू कर दिया—"मामा! क्या किसी उपाय से हमारी रक्षा हो सकती है?"

बगुला बोला—"यहाँ से थोड़ी दूर पर एक प्रचुर जल से भरा जलाशय है। वह इतना बड़ा है कि २४ वर्ष सूखा पड़ने पर भी न सूखे। तुम यदि मेरी पीठ पर चढ़ जाओगे तो तुम्हें वहाँ ले चलूंगा।"

यह सुनकर सभी मछलियों, कछुओं और अन्य जलजीवों ने बगुले को 'भाई', 'मामा', 'चाचा' पुकारते हुए चारों ओर से घेर लिया और चिल्लाना शुरू कर दिया—'पहले मुझे', 'पहले मुझे'।

वह दुष्ट भी सब को बारी-बारी अपनी पीठ पर बिठाकर जलाशय से कुछ दूर ले जाता और वहाँ एक शिला पर उन्हें पटक-पटक कर मार देता था। दूसरे दिन उन्हें खाकर वह फिर जलाशय में आ जाता और नये शिकार ले जाता। कुछ दिन बाद केकड़े ने बगुले से कहा —

"मामा! मेरी तुम से पहले-पहल भेंट हुई थी, फिर भी आज तक तुम मुझे नहीं ले गये। अब प्रायः सभी नये जलाशय तक पहुँच चुके हैं; आज मेरा भी उद्धार कर दो।"

केकड़े की बात सुनकर बगुले ने सोचा, 'मछलियाँ खाते-खाते मेरा मन भी अब ऊब गया है। केकड़े का मांस चटनी का काम देगा। आज इसका ही आहार करूँगा।'

यह सोचकर उसने केकड़े को गर्दन पर बिठा लिया और वध-स्थान की ओर ले चला।

केकड़े ने दूर से ही जब एक शिला पर मछलियों की हड्डियों का पहाड़ सा लगा देखा तो वह समझ गया कि यह बगुला किस अभिप्राय से मछलियों को यहाँ लाता था। फिर भी वह असली बात को छिपाकर प्रगट में बोला—"मामा! वह जलाशय अब कितनी दूर रह गया है? मेरे भार से तुम इतना थक गये होगे, इसीलिए पूछ रहा हूँ।"

बगुले ने सोचा, अब इसे सच्ची बात कह देने में भी कोई हानि नहीं है; इसलिए वह बोला—"केकड़े साहब! दूसरे जलाशय की बात अब भूल जाओ। यह तो मेरी प्राणयात्रा चल रही थी। अब तेरा भी काल आ गया है। अन्तिम समय में देवता का स्मरण कर ले। इसी शिला पर पटक कर तुझे भी मार डालूंगा और खा जाऊँगा।"

बगुला अभी यह बात कह ही रहा था कि केकड़े ने अपने तीखे दांत बगुला की नरम, मुलायम गरदन पर गाड़ दिये। बगुला वहीं मर गया। उसकी गरदन कट गई।

केकड़ा मृत-बगुले की गरदन लेकर धीरे-धीरे अपने पुराने जलाशय पर ही आ गया। उसे देखकर उसके भाई-बन्दों ने उसे

घेर लिया और पूछने लगे—"क्या बात है ? आज मामा नहीं आए ? हम सब उनके साथ नए जलाशय पर जाने को तैयार बैठे हैं।"

केकड़े ने हँसकर उत्तर दिया—"मूर्खो ! उस बगुले ने सभी मछलियों को यहाँ से ले जाकर एक शिला पर पटक कर मार दिया है।" यह कहकर उसने अपने पास से बगुले की कटी हुई गरदन दिखाई और कहा —"अब चिन्ता की कोई बात नहीं है, तुम सब यहाँ आनन्द से रहोगे।"

× × ×

गीदड़ ने जब यह कथा सुनाई तो कौवे ने पूछा—"मित्र ! उस बगुले की तरह यह साँप भी किसी तरह मर सकता है ?"

गीदड़—"एक काम करो। तुम नगर के राजमहल में चले जाओ। वहाँ से रानी का कंठहार उठाकर साँप के बिल के पास रख दो। राजा के सैनिक कण्ठहार की खोज में आयेंगे और साँप को मार देंगे।"

दूसरे ही दिन कौवी राजमहल के अन्तःपुर में जाकर एक कण्ठहार उठा लाई। राजा ने सिपाहियों को उस कौवी का पीछा करने का आदेश दिया। कौवी ने वह कण्ठहार साँप के बिल के पास रख दिया। साँप ने उस हार को देखकर उस पर अपना फन फैला दिया था। सिपाहियों ने साँप को लाठियों से मार दिया और कण्ठहार ले लिया।

उस दिन के बाद कौवा-कौवी की सन्तान को किसी साँप ने नहीं खाया। तभी मैं कहता हूँ कि उपाय से ही शत्रु को वश में करना चाहिये।

× × ×

दमनक ने फिर कहा—"सच तो यह है कि बुद्धि का स्थान बल से बहुत ऊँचा है। जिसके पास बुद्धि है, वही बली है। बुद्धि-हीन का बल भी व्यर्थ है। बुद्धिमान निर्बुद्धि को उसी तरह हरा देते हैं जैसे खरगोश ने शेर को हरा दिया था।

करटक ने पूछा—"कैसे ?"

दमनक ने तब 'शेर-खरगोश की कथा' सुनाई—

५.

सब से बड़ा बल बुद्धि-बल

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।

. . . .

बली वही है, जिसके पास बुद्धिबल है ।

. . . .

एक जंगल में भासुरक नाम का शेर रहता था। बहुत बलशाली होने के कारण वह प्रतिदिन जंगल के अनेक मृग-खरगोश-हिरण-रीछ-चीता आदि पशुओं को मारा करता था।

एक दिन जंगल के सभी जानवरों ने मिलकर सभा की और निश्चय किया कि भासुरक शेर से प्रार्थना की जाय कि वह अपने भोजन के लिये प्रतिदिन एक पशु से अधिक की हत्या न किया करे। इस निश्चय को शेर तक पहुँचाने के लिये पशुओं के प्रतिनिधि शेर से मिले। उन्होंने शेर से निवेदन किया कि उसे रोज़ एक पशु बिना शिकार के मिल जाया करेगा, इसलिए वह अनगिनत पशुओं का शिकार न किया करे। शेर यह बात मान गया। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि वे अपने वचनों का पालन करेंगे।

उस दिन के बाद से वन के अन्य पशु वन में निर्भय घूमने लगे। उन्हें शेर का भय नहीं रहा। शेर को भी घर बैठे एक पशु

मिलता रहा। शेर ने यह धमकी दे दी थी कि जिस दिन उसे कोई पशु नहीं मिलेगा उस दिन वह फिर अपने शिकार पर निकल जायगा और मनमाने पशुओं की हत्या कर देगा। इस डर से भी सब पशु यथाक्रम एक-एक पशु को शेर के पास भेजते रहे।

इसी क्रम से एक दिन खरगोश की बारी आगई। खरगोश शेर की मांद की ओर चल पड़ा। किन्तु, मृत्यु के भय से, उसके पैर नहीं उठते थे। मौत की घड़ियों को कुछ देर और टालने के लिये वह जंगल में इधर-उधर भटकता रहा। एक स्थान पर उसे एक कुआँ दिखाई दिया। कुएँ में झांक कर देखा तो उसे अपनी परछांई दिखाई दी। उसे देखकर उसके मन में एक विचार उठा—"क्यों न भासुरक को उसके वन में दूसरे शेर के नाम से उसकी परछांई दिखाकर इस कुएँ में गिरा दिया जाय ?"

यही उपाय सोचता-सोचता वह भासुरक शेर के पास बहुत समय बीते पहुँचा। शेर उस समय तक भूखा-प्यासा होंठ चाटता बैठा था। उसके भोजन की घड़ियां बीत रही थीं। वह सोच ही रहा था कि कुछ देर और कोई पशु न आया तो वह अपने शिकार पर चल पड़ेगा और पशुओं के खून से सारे जंगल को सींच देगा। इसी बीच वह खरगोश उसके पास पहुँच गया और प्रणाम करके बैठ गया।

खरगोश को देखकर शेर ने क्रोध से लाल-लाल आंखे करते हुए गरजकर कहा—"नीच खरगोश ! एक तो तू इतना छोटा है, और फिर इतनी देर लगाकर आया है; आज तुझे मार कर कल

मैं जंगल के सारे पशुओं की जान ले लूंगा, वंश नाश कर दूंगा।"

खरगोश ने विनय से सिर झुकाकर उत्तर दिया—

"स्वामी! आप व्यर्थ क्रोध करते हैं। इसमें न मेरा अपराध है, और न ही अन्य पशुओं का। कुछ भी फैसला करने से पहले देरी का कारण तो सुन लीजिये।"

शेर—"जो कुछ कहना है, जल्दी कह। मैं बहुत भूखा हूँ, कहीं तेरे कुछ कहने से पहले ही तुझे अपनी दाढ़ों में न चबा जाऊँ।"

खरगोश—"स्वामी! बात यह है कि सभी पशुओं ने आज सभा करके और यह सोचकर कि मैं बहुत छोटा हूँ, मुझे तथा अन्य चार खरगोशों को आपके भोजन के लिए भेजा था। हम पाँचों आपके पास आ रहे थे कि मार्ग में कोई दूसरा शेर अपनी गुफा से निकल कर आया और बोला—"अरे! किधर जा रहे हो तुम सब? अपने देवता का अन्तिम स्मरण कर लो, मैं तुम्हें मारने आया हूँ।" मैंने उसे कहा कि "हम सब अपने स्वामी भासुरक शेर के पास आहार के लिए जा रहे हैं।" तब वह बोला, "भासुरक कौन होता है? यह जंगल तो मेरा है। मैं ही तुम्हारा राजा हूँ। तुम्हें जो बात कहनी हो मुझ से कहो। भासुरक चोर है। तुम में से चार खरगोश यहीं रह जायें, एक खरगोश भासुरक के पास जाकर उसे बुला लाए। मैं उससे स्वयं निपट लूंगा। हममें जो शेर अधिक बली होगा वही इस जंगल का राजा होगा।" अब मैं किसी तरह उससे जान छुड़ाकर आप के पास

आया हूँ। इसीलिये मुझे देर हो गई। आगे स्वामी की जो इच्छा हो, करें।"

यह सुनकर भासुरक बोला—"ऐसा ही है तो जल्दी से मुझे उस दूसरे शेर के पास ले चल। आज मैं उसका रक्त पीकर ही अपनी भूख मिटाऊँगा। इस जंगल में मैं किसी दूसरे का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता।"

खरगोश—"स्वामी! यह तो सच है कि अपने स्वत्व के लिये युद्ध करना आप जैसे शूरवीरों का धर्म है, किन्तु दूसरा शेर अपने दुर्ग में बैठा है। दुर्ग से बाहिर आकर ही उसने हमारा रास्ता रोका था। दुर्ग में रहने वाले शत्रु पर विजय पाना बड़ा कठिन होता है। दुर्ग में बैठा एक शत्रु सौ शत्रु के बराबर माना जाता है। दुर्गहीन राजा दन्तहीन साँप और मदहीन हाथी की तरह कमज़ोर हो जाता है।"

भासुरक—"तेरी बात ठीक है, किन्तु मैं उस दुर्गस्थ शेर को भी मार डालूँगा। शत्रु को जितनी जल्दी हो नष्ट कर देना चाहिये। मुझे अपने बल पर पूरा भरोसा है। शीघ्र ही उसका नाश न किया गया तो वह बाद में असाध्य रोग की तरह प्रबल हो जायगा।"

खरगोश—"यदि स्वामी का यही निर्णय है तो आप मेरे साथ चलिये।"

यह कहकर खरगोश भासुरक शेर को उसी कुएँ के पास ले

गया, जहाँ झुककर उसने अपनी परछाईं देखी थी। वहाँ जाकर वह बोला—

"स्वामी ! मैंने जो कहा था वही हुआ। आप को दूर से ही देखकर वह अपने दुर्ग में घुस गया है। आप आइये, मैं आप को उसकी सूरत तो दिखा दूं।"

भासुरक—"ज़रूर ! उस नीच को देखकर मैं उसके दुर्ग में ही उससे लड़ूँगा।"

खरगोश शेर को कुएँ की मेढ़ पर ले गया। भासुरक ने झुक-कर कुएँ में अपनी परछाईं देखी तो समझा कि यही दूसरा शेर है। तब, वह ज़ोर से गरजा। उसकी गर्ज के उत्तर में कुएँ से दुगनी गूंज पैदा हुई। उस गूंज को प्रतिपक्षी शेर की ललकार समझ कर भासुरक उसी क्षण कुएँ में कूद पड़ा, और वहीं पानी में डूबकर प्राण दे दिये।

खरगोश ने अपनी बुद्धिमत्ता से शेर को हरा दिया। वहाँ से लौटकर वह पशुओं की सभा में गया। उसकी चतुराई सुनकर और शेर की मौत का समाचार सुनकर सब जानवर खुशी से नाच उठे।

इसीलिये मैं कहता हूँ कि "बली वही है जिसके पास बुद्धि का बल है।"

× × ×

दमनक ने कहानी सुनाने के बाद करटक से कहा कि—"तेरी सलाह हो तो मैं भी अपनी बुद्धि से उनमें फूट डलवा दूं। अपनी

प्रभुता बनाने का यही एक मार्ग है। मैत्री भेद किये बिना काम नहीं चलेगा।"

करटक—"मेरी भी यही राय है। तू उनमें भेद कराने का यत्न कर। ईश्वर करे तुझे सफलता मिले।"

वहाँ से चलकर दमनक पिंगलक के पास गया। उस समय पिंगलक के पास संजीवक नहीं बैठा था। पिंगलक ने दमनक को बैठने का इशारा करते हुए कहा—"कहो दमनक! बहुत दिन बाद दर्शन दिये।"

दमनक—"स्वामी! आप को अब हम से कुछ प्रयोजन ही नहीं रहा तो आने का क्या लाभ? फिर भी आप के हित की बात कहने को आप के पास आ जाता हूँ। हित की बात बिना पूछे भी कह देनी चाहिये।"

पिंगलक—"जो कहना हो, निर्भय होकर कहो। मैं अभय वचन देता हूँ।"

दमनक—"स्वामी! संजीवक आप का मित्र नहीं, वैरी है। एक दिन उसने मुझे एकान्त में कहा था कि, "पिंगलक का बल मैंने देख लिया; उसमें विशेष सार नहीं है, उसको मारकर मैं तुझे मन्त्री बनाकर सब पशुओं पर राज्य करूँगा।"

दमनक के मुख से इन वज्र की तरह कठोर शब्दों को सुनकर पिङ्गलक ऐसा चुप रह गया मानो मूर्छना आ गई हो। दमनक ने जब पिङ्गलक की यह अवस्था देखी तो सोचा—'पिङ्गलक का

संजीवक से प्रगाढ़ स्नेह है, संजीवक ने इसे वश में कर रखा है, जो राजा इस तरह मन्त्री के वश में हो जाता है वह नष्ट हो जाता है।' यह सोचकर उसने पिङ्गलक के मन से संजीवक का जादू मिटाने का निश्चय और भी पक्का कर लिया।

पिङ्गलक ने थोड़ा होश में आकर किसी तरह धैर्य धारण करते हुए कहा—"दमनक ! संजीवक तो हमारा बहुत ही विश्वास-पात्र नौकर है। उसके मन में मेरे लिये वैर भावना नहीं हो सकती।"

दमनक—"स्वामी ! आज जो विश्वास-पात्र है, वही कल विश्वास-घातक बन जाता है। राज्य का लोभ किसी के भी मन को चंचल बना सकता है। इसमें अनहोनी कोई बात नहीं।"

पिङ्गलक—"दमनक ! फिर भी मेरे मन में संजीवक के लिये द्वेष-भावना नहीं उठती। अनेक दोष होने पर भी प्रियजनों को छोड़ा नहीं जाता। जो प्रिय है, वह प्रिय ही रहता है।"

दमनक—"यही तो राज्य-संचालन के लिए बुरा है। जिसे भी आप स्नेह का पात्र बनायेंगे वही आपका प्रिय हो जाएगा। इसमें संजोवक की कोई विशेषता नहीं। विशेषता तो आपकी है। आपने उसे अपना प्रिय बना लिया तो वह बन गया। अन्यथा उसमें गुण ही कौन-सा है ? यदि आप यह समझते हैं कि उसका शरीर बहुत भारी है, और वह शत्रु-संहार में सहायक होगा, तो यह आपकी भूल है। वह तो घास-पात खाने वाला जीव है। आपके शत्र तो सभी मांसाहारी हैं। अतः उसकी सहायता से

शत्रु-नाश नहीं हो सकता। आज वह आपको धोखे से मारकर राज्य करना चाहता है। अच्छा है कि उसका षड्यन्त्र पकने से पहले ही उसको मार दिया जाए।"

पिङ्गलक:—"दमनक! जिसे हम ने पहले गुणी मानकर अपनाया है उसे राज-सभा में आज निर्गुण कैसे कह सकते हैं? फिर तेरे कहने से ही तो मैंने उसे अभयवचन दिया था। मेरा मन कहता है कि संजीवक मेरा मित्र है, मुझे उसके प्रति कोई क्रोध नहीं है। यदि उसके मन में वैर आ गया है तो भी मैं उसके प्रति वैर-भावना नहीं रखता। अपने हाथों लगाया विष-वृक्ष भी अपने हाथों नहीं काटा जाता।"

दमनक—"स्वामी! यह आपकी भावुकता है। राज-धर्म इसका आदेश नहीं देता। वैर बुद्धि रखने वाले को क्षमा करना राजनीति की दृष्टि से मूर्खता है। आपने उसकी मित्रता के वश में आकर सारा राज-धर्म भुला दिया है। आपके राज-धर्म से च्युत होने के कारण ही जङ्गल के अन्य पशु आपसे विरक्त हो गए हैं। सच तो यह है कि आप में और संजीवक में मैत्री होना स्वाभाविक ही नहीं है। आप मांसाहारी हैं, वह निरामिषभोजी। यदि आप उस घासपात खाने वाले को अपना मित्र बनायेंगे तो अन्य पशु आप से सहयोग करना बन्द कर देंगे। यह भी आपके राज्य के लिए बुरा होगा। उसके संग से आपकी प्रकृति में भी वे दुर्गुण आ जायेंगे जो शाकाहारियों में होते हैं। शिकार से

आपको अरुचि हो जाएगी। आपका सहवास अपनी प्रकृति के पशुओं से ही होना चाहिए।

इसीलिए साधु लोग नीच का संग छोड़ देते हैं। संग-दोष से ही खटमल की मन्दगति के कारण वेगवती जूं को भी मरना पड़ा था।"

पिङ्गलक ने पूछा—"यह कथा कैसे है ?"

दमनक ने कहा—"सुनिये—

६.

कुसङ्ग का फल

'नह्यविज्ञातशीलस्य प्रदातव्य प्रतिश्रयः'

. . . .

अज्ञात या विरोधी प्रवृत्ति के व्यक्ति को आश्रय नहीं देना चाहिए।

. . . .

एक राजा के शयन-गृह में शैया पर बिछी सफ़ेद चादरों के बीच एक मन्दविसर्पिणी सफेद जूं रहती थी। एक दिन इधर-उधर घूमता हुआ एक खटमल भी वहाँ आ गया। उस खटमल का नाम था 'अग्निमुख'।

अग्निमुख को देखकर दुःखी जूं ने कहा—"हे अग्निमुख! तू यहाँ अनुचित स्थान पर आ गया है। इस से पूर्व कि कोई आकर तुझे देखे, यहां से भाग जा।"

खटमल बोला—"भगवती! घर आये दुष्ट व्यक्ति का भी इतना अनादर नहीं किया जाता, जितना तू मेरा कर रही है। उससे भी कुशल-क्षेम पूछा जाता है। घर बनाकर बैठने वालों का यही धर्म है। मैंने आज तक अनेक प्रकार का कटु-तिक्त-कषाय-

अम्ल रस का खून पिया है; केवल मीठा खून नहीं पिया। आज इस राजा के मीठे खून का स्वाद लेना चाहता हूँ। तू तो रोज़ ही मीठा खून पीती है। एक दिन मुझे भी उसका स्वाद लेने दे।"

जूं बोली—"अग्निमुख! मैं राजा के सो जाने के बाद उस का खून पीती हूँ। तू बड़ा चंचल है, कहीं मुझ से पहले ही तूने खून पीना शुरू कर दिया तो दोनों मारे जायँगे। हाँ, मेरे पीछे रक्तपान करने की प्रतिज्ञा करे तो एक रात भले ही ठहर जा।"

खटमल बोला—"भगवती! मुझे स्वीकार है। मैं तब तक रक्त नहीं पीऊँगा जब तक तू नहीं पीलेगी। वचन भंग करूँ तो मुझे देव-गुरु का शाप लगे।"

इतने में राजा ने चादर ओढ़ ली। दीपक बुझा दिया। खटमल बड़ा चंचल था। उसकी जीभ से पानी निकल रहा था। मीठे खून के लालच से उसने जूं के रक्तपान से पहले ही राजा को काट लिया। जिसका जो स्वभाव हो, वह उपदेशों से नहीं छूटता। अग्नि अपनी जलन और पानी अपनी शीतलता के स्वभाव को कहां छोड़ सकती है? मर्त्य जीव भी अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं जा सकते।

अग्निमुख के पैने दांतों ने राजा को तड़पा कर उठा दिया। पलंग से नीचे कूद कर राजा ने सन्तरी से कहा—"देखो, इस शैया में खटमल या जूं अवश्य है। इन्हीं में से किसी ने मुझे काटा है।" सन्तरियों ने दीपक जला कर चादर की तहें देखनी शुरू कर दीं। इस बीच खटमल जल्दी से भागकर पलंग के पावों

के जोड़ में जा छिपा। मन्दविसर्पिणी जूं चादर की तह में ही छिपी थी। सन्तरियों ने उसे देखकर पकड़ लिया और मसल डाला।"

× × ×

दमनक शेर से बोला—"इसीलिये मैं कहता हूँ कि संजीवक को मार दो, अन्यथा वह आपको मार देगा, अथवा उसकी संगति से आप जब स्वभाव-विरुद्ध काम करेंगे, अपनों को छोड़कर परायों को अपनायेंगे, तो आप पर वही आपत्ति आजायगी जो 'चंडरव' पर आई थी।

पिंगलक ने पूछा—"कैसे ?"

दमनक ने कहा—"सुनो—

७.
रंगा सियार

त्यक्ताश्चाभ्यान्तरा येन बाह्याश्चाभ्यान्तरीकृताः।
स एव मृत्युमाप्नोति मूर्खश्चंडरवो यथा ॥

. . . .

अपने स्वभाव के विरुद्ध आचरण करने वाला—
आत्मीयों को छोड़कर परकीयों में रहने वाला
नष्ट हो जाता है।

. . . .

एक दिन जंगल में रहने वाला चंडरव नाम का गीदड़ भूख से तड़पता हुआ लोभवश नगर में भूख मिटाने के लिये आ पहुँचा।

उसके नगर में प्रवेश करते ही नगर के कुत्तों ने भौंकते-भौंकते उसे घेर लिया और नोचकर खाने लगे। कुत्तों के डर से चंडरव भी जान बचाकर भागा। भागते-भागते जो भी दरवाज़ा पहले मिला उसमें घुस गया। वह एक धोबी के मकान का दरवाज़ा था। मकान के अन्दर एक बड़ी कड़ाही में धोबी ने नील घोलकर नीला पानी बनाया हुआ था। कड़ाही नीले पानी से भरी थी। गीदड़ जब डरा हुआ अन्दर घुसा तो अचानक उस कड़ाही में जा गिरा। वहाँ से निकला तो उसका रंग ही बदला हुआ था। अब वह

बिल्कुल नीले रंग का हो गया। नीले रंग में रंगा हुआ चंडरव जब वन में पहुँचा तो सभी पशु उसे देखकर चकित रह गये। वैसे रंग का जानवर उन्होंने आज तक नहीं देखा था।

उसे विचित्र जीव समझकर शेर, बाघ, चीते भी डर-डर कर जंगल से भागने लगे। सबने सोचा, "न जाने इस विचित्र पशु में कितना सामर्थ्य हो। इससे डरना ही अच्छा है...।"

चंडरव ने जब सब पशुओं को डरकर भागते देखा तो बुलाकर बोला—"पशुओ! मुझसे डरते क्यों हो? मैं तुम्हारी रक्षा के लिये यहाँ आया हूँ। त्रिलोक के राजा ब्रह्मा ने मुझे आज ही बुलाकर कहा था कि—'आजकल चौपायों का कोई राजा नहीं है। सिंह-मृगादि सब राजाहीन हैं। आज मैं तुझे उन सब का राजा बनाकर भेजता हूँ। तू वहाँ जाकर सबकी रक्षा कर।' इसीलिये मैं यहाँ आ गया हूँ। मेरी छत्रछाया में सब पशु आनन्द से रहेंगे। मेरा नाम ककुद्द्रुम राजा है।"

यह सुनकर शेर-बाघ आदि पशुओं ने चंडरव को राजा मान लिया; और बोले, "स्वामी! हम आपके दास हैं, आज्ञा-पालक हैं। आगे से आप की आज्ञा का ही हम पालन करेंगे।"

चंडरव ने राजा बनने के बाद शेर को अपना प्रधान मंत्री बनाया, बाघ को नगर-रक्षक और भेड़िये को सन्तरी बनाया। अपने आत्मीय गीदड़ों को जंगल से बाहर निकाल दिया। उनसे बात भी नहीं की।

उसके राज्य में शेर आदि जीव छोटे-छोटे जानवरों को मार-

कर चंडरव की भेंट करते थे; चंडरव उनमें से कुछ भाग खाकर शेष अपने नौकरों-चाकरों में बाँट देता था।

कुछ दिन तो उसका राज्य बड़ी शान्ति से चलता रहा। किन्तु, एक दिन बड़ा अनर्थ हो गया।

उस दिन चंडरव को दूर से गीदड़ों की किलकारियाँ सुनाई दीं। उन्हें सुनकर चंडरव का रोम-रोम खिल उठा। खुशी में पागल होकर वह भी किलकारियाँ मारने लगा।

शेर-बाघ आदि पशुओं ने जब उसकी किलकारियाँ सुनीं तो वे समझ गये कि यह चंडरव ब्रह्मा का दूत नहीं, बल्कि मामूली गीदड़ है। अपनी मूर्खता पर लज्जा से सिर झुकाकर वे आपस में सलाह करने लगे—"इस गीदड़ ने तो हमें खूब मूर्ख बनाया, इसे इसका दंड दो, इसे मार डालो।"

चंडरव ने शेर-बाघ आदि की बात सुन ली। वह भी समझ गया कि अब उसकी पोल खुल गई है। अब जान बचानी कठिन है। इसलिये वह वहाँ से भागा। किन्तु, शेर के पंजे से भागकर कहाँ जाता? एक ही छलांग में शेर ने उसे दबोच कर खंड-खंड कर दिया।

इसीलिये मैं कहता हूँ कि जो आत्मीयों को दुत्कार कर परायों को अपनाता है उसका नाश हो जाता है।"

× × ×

दमनक की बात सुनकर पिंगलक ने कहा—"दमनक! अपनी बात को तुम्हें प्रमाणित करना होगा। इसका क्या प्रमाण है कि

संजीवक मुझे द्वेषभाव से देखता है।"

दमनक—"इसका प्रमाण आप स्वयं अपनी आँखों से देख लेना। आज सुबह ही उसने मुझ से यह भेद प्रगट किया है कि कल वह आपका वध करेगा। कल यदि आप उसे अपने दरबार में लड़ाई के लिये तैयार देखें, उसकी आँखें लाल हों, होंठ फड़कते हों, एक ओर बैठकर आप को क्रूर वक्रदृष्टि से देख रहा हो, तब आप को मेरी बात पर स्वयं विश्वास हो जायगा।"

❀ ❀ ❀

शेर पिंगलक को संजीवक बैल के विरुद्ध उकसाने के बाद दमनक संजीवक के पास गया। संजीवक ने जब उसे घबड़ाये हुए आते देखा तो पूछा—"मित्र! स्वागत हो। क्या बात है? बहुत दिन बाद आए? कुशल तो है?"

दमनक—"राज-सेवकों के कुशल का क्या पूछना? उनका चित्त सदा अशान्त रहता है। स्वेच्छा से वे कुछ भी नहीं कर सकते। निःशंक होकर एक शब्द भी नहीं बोल सकते। इसीलिये सेवावृत्ति को सब वृत्तियों से अधम कहा जाता है।"

संजीवक—"मित्र! आज तुम्हारे मन में कोई विशेष बात कहने को है, वह निश्चिन्त होकर कहो। साधारणतया राजसचिवों को सब कुछ गुप्त रखना चाहिये, किन्तु मेरे-तुम्हारे बीच कोई परदा नहीं है। तुम बेखटके अपने दिल की बात मुझ से कह सकते हो।"

दमनक—"आपने अभय वचन दिया है, इसलिये मैं कह देता हूँ। बात यह है कि पिंगलक के मन में आप के प्रति पाप-भावना आगई है। आज उसने मुझे बिल्कुल एकान्त में बुलाकर कहा है कि कल सुबह ही वह आप को मारकर अन्य मांसाहारी जीवों की भूख मिटायेगा।"

दमनक की बात सुनकर संजीवक देर तक हतप्रभ-सा रहा; मूर्छना सी छा गई उसके शरीर में। कुछ चेतना आने के बाद तीव्र वैराग्य-भरे शब्दों में बोला—"राजसेवा सचमुच बड़ा धोखे का काम है। राजाओं के दिल होता ही नहीं। मैंने भी शेर से मैत्री करके मूर्खता की। समान बल-शील वालों से मैत्री होती है; समान शील-व्यसन वाले ही सखा बन सकते हैं। अब, यदि मैं उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करूँगा तो भी व्यर्थ है, क्योंकि जो किसी कारण-वश क्रोध करे उसका क्रोध उस कारण के दूर होने पर दूर किया जा सकता है, लेकिन जो अकारण ही कुपित हो उसका कोई उपाय नहीं है। निश्चय ही, पिंगलक के पास रहने वाले जीवों ने ईर्ष्यावश उसे मेरे विरुद्ध उकसा दिया है। सेवकों में प्रभु की प्रसन्नता पाने की होड़ लगी ही रहती है। वे एक दूसरे की वृद्धि सहन नहीं करते।"

दमनक—"मित्रवर! यदि यही बात है तो मीठी बातों से अब राजा पिंगलक को प्रसन्न किया जा सकता है। वही उपाय करो।"

संजीवक—"नहीं, दमनक! यह उपाय सच्चा उपाय नहीं है। एक बार तो मैं राजा को प्रसन्न कर लूँगा किन्तु, उसके पास

वाले कूट-कपटी लोग फिर किन्हीं दूसरे झूठे बहानों से उसके मन में मेरे लिये ज़हर भर देंगे और मेरे वध का उपाय करेंगे, जिस तरह गीदड़ और कौवे ने मिलकर ऊँट को शेर के हाथों मरवा दिया था।

दमनक ने पूछा—"किस तरह ?"

संजीवक ने तब ऊँट, कौवों और शेर की यह कहानी सुनाई—

८.

फूंक-फूंक कर पग धरो

सेवाधर्मः परम गहनो...।

. . .

सेवाधर्म बड़ा कठिन धर्म है।'

. . .

एक जङ्गल में मदोत्कट नाम का शेर रहता था। उसके नौकर-चाकरों में कौवा, गीदड़, बाघ, चीता आदि अनेक पशु थे। एक दिन वन में घूमते-घूमते एक ऊँट वहां आ गया। शेर ने ऊँट को देखकर अपने नौकरों से पूछा—"यह कौनसा पशु है? जङ्गली है या ग्राम्य?"

कौवे ने शेर के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"स्वामी! यह पशु ग्राम्य है और आपका भोज्य है। आप इसे खाकर भूख मिटा सकते हैं।"

शेर ने कहा—"नहीं, यह हमारा अतिथि है, घर आये को मारना उचित नहीं। शत्रु भी अगर घर आये तो उसे नहीं मारना चाहिये। फिर, यह तो हम पर विश्वास करके हमारे घर आया है। इसे मारना पाप है। इसे अभय दान देकर मेरे पास

लाओ। मैं इससे वन में आने का प्रयोजन पूछूँगा।"

शेर की आज्ञा सुनकर अन्य पशु ऊँट को—जिसका नाम 'क्रथनक' था, शेर के दरबार में लाये। ऊँट ने अपनी दुःखभरी कहानी सुनाते हुए बतलाया कि वह अपने साथियों से बिछुड़ कर जङ्गल में अकेला रह गया है। शेर ने उसे धीरज बंधाते हुए कहा—"अब तुझे ग्राम में जाकर भार ढोने की कोई आवश्यकता नहीं है। जङ्गल में रहकर हरी-हरी घास से सानन्द पेट भरो और स्वतन्त्रतापूर्वक खेलो-कूदो।"

शेर का आश्वासन मिलने के बाद ऊँट उस जंगल में आनन्द से रहने लगा।

कुछ दिन बाद उस वन में एक मतवाला हाथी आ गया। मतवाले हाथी से अपने अनुचर पशुओं की रक्षा करने के लिए शेर को हाथी से युद्ध करना पड़ा। युद्ध में जीत तो शेर की ही हुई, किन्तु हाथी ने भी जब एक बार शेर को सूंड में लपेट कर घुमाया तो उसके अस्थि-पिंजर हिल गये। हाथी का एक दांत भी शेर की पीठ में खुभ गया था। इस युद्ध के बाद शेर बहुत घायल हो गया था, और नए शिकार के योग्य नहीं रहा था। शिकार के अभाव में उसे बहुत दिन से भोजन नहीं मिला था। उसके अनुचर भी, जो शेर के अवशिष्ट भोजन से ही पेट पालते थे, कई दिनों से भूखे थे।

एक दिन उन सब को बुलाकर शेर ने कहा—"मित्रो! मैं बहुत घायल हो गया हूँ। फिर भी यदि कोई शिकार तुम मेरे पास

तक ले आओ, तो मैं उसको मारकर तुम्हारे पेट भरने योग्य मांस अवश्य तुम्हें दे दूंगा।"

शेर की बात सुनकर चारों अनुचर ऐसे शिकार की खोज में लग गये। किन्तु कोई फल न निकला। तब कौवे और गीदड़ में मन्त्रणा हुई। गीदड़ बोला—"काकराज! अब इधर-उधर भटकने का क्या लाभ? क्यों न इस ऊँट 'क्रथनक' को मार कर ही भूख मिटायें?"

कौवा बोला—"तुम्हारी बात तो ठीक है, किन्तु स्वामी ने उसे अभय वचन दिया हुआ है।"

गीदड़—"मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे स्वामी उसे मारने को तैयार हो जायँ। आप यहीं रहें, मैं स्वयं जाकर स्वामी से निवेदन करता हूँ।"

गीदड़ ने तब शेर के पास जाकर कहा—"स्वामी! हमने सारा जङ्गल छान मारा है। किन्तु कोई भी पशु हाथ नहीं आया। अब तो हम सभी इतने भूखे-प्यासे हो गये हैं कि एक क़दम आगे नहीं चला जाता। आपकी दशा भी ऐसी ही है। आज्ञा दें तो 'क्रथनक' को ही मार कर उससे भूख शान्त की जाय।"

गीदड़ की बात सुनकर शेर ने क्रोध से कहा—"पापी! आगे कभी यह बात मुख से निकाली तो उसी क्षण तेरे प्राण ले लूँगा। जानता नहीं कि उसे मैंने अभय वचन दिया है?"

गीदड़—"स्वामी! मैं आपको वचन-भंग के लिए नहीं कह रहा। आप उसका स्वयं वध न कीजिये, किन्तु यदि वही स्वयं

आपकी सेवा में प्राणों की भेंट लेकर आए, तब तो उसके वध में कोई दोष नहीं है। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो हम में से सभी आपकी सेवा में अपने शरीर की भेंट लेकर आपकी भूख शान्त करने के लिए आयेंगे। जो प्राण स्वामी के काम न आयें, उनका क्य उपयोग ? स्वामी के नष्ट होने पर अनुचर स्वयं नष्ट हो जाते हैं। स्वामी की रक्षा करना उनका धर्म है।"

मदोत्कट—"यदि तुम्हारा यही विश्वास है तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं।"

शेर से आश्वासन पाकर गीदड़ अपने अन्य अनुचर साथियों के पास आया और उन्हें लेकर फिर शेर के सामने उपस्थित हो गया। वे सब अपने शरीर के दान से स्वामी की भूख शान्त करने आए थे। गीदड़ उन्हें यह वचन देकर लाया था कि शेर शेष सब पशुओं को छोड़कर ऊँट को ही मारेगा।

सब से पहले कौवे ने शेर के सामने जाकर कहा—"स्वामी ! मुझे खाकर अपनी जान बचाइये, जिससे मुझे स्वर्ग मिले। स्वामी के लिए प्राण देने वाला स्वर्ग जाता है, वह अमर हो जाता है।"

गीदड़ ने कौवे को कहा—"अरे कौवे, तू इतना छोटा है कि तेरे खाने से स्वामी की भूख बिल्कुल शान्त नहीं होगी। तेरे शरीर में माँस ही कितना है जो कोई खाएगा ? मैं अपना शरीर स्वामी को अर्पण करता हूँ।"

गीदड़ ने जब अपना शरीर भेंट किया तो बाघ ने उसे हटाते हुए कहा—"तू भी बहुत छोटा है। तेरे नख इतने बड़े और

विषैले हैं कि जो खायगा उसे ज़हर चढ़ जायगा। इसलिए तू अभक्ष्य है। मैं अपने को स्वामी के अर्पण करूँगा। मुझे खाकर वे अपनी भूख शान्त करें।"

उसे देखकर क्रथनक ने सोचा कि वह भी अपने शरीर को अर्पण कर दे। जिन्होंने ऐसा किया था उन में से किसी को भी शेर ने नहीं मारा था, इसलिए उसे भी मरने का डर नहीं रहा था। यही सोचकर क्रथनक ने भी आगे बढ़कर बाघ को एक ओर हटा दिया और अपने शरीर को शेर के अर्पण किया।

तब शेर का इशारा पाकर गीदड़, चीता, बाघ आदि पशु ऊँट पर टूट पड़े और उसका पेट फाड़ डाला। सब ने उसके माँस से अपनी भूख शान्त की।

× × ×

संजीवक ने दमनक से कहा—"तभी मैं कहता हूँ कि छल-कपट से भरे वचन सुन कर किसी को उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए और यह कि राजा के अनुचर जिसे मरवाना चाहें उसे किसी न किसी उपाय से मरवा ही देते हैं। निःसन्देह किसी नीच ने मेरे विरुद्ध राजा पिंगलक को उकसा दिया है। अब दमनक भाई! मैं एक मित्र के नाते तुझ से पूछता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए?"

दमनक—"मैं तो समझता हूँ कि ऐसे स्वामी की सेवा का कोई लाभ नहीं है। अच्छा है कि तुम यहाँ से जाकर किसी दूसरे देश में घर बनाओ। ऐसी उल्टी राह पर चलने वाले स्वामी

का परित्याग करना ही अच्छा है।"

संजीवक—"दूर जाकर भी अब छुटकारा नहीं है। बड़े लोगों से शत्रुता लेकर कोई कहीं शान्ति से नहीं बैठ सकता। अब तो युद्ध करना ही ठीक जचता है। युद्ध में एक बार ही मौत मिलती है, किन्तु शत्रु से डर कर भागने वाला तो प्रतिक्षण चिन्तित रहता है। उस चिन्ता से एक बार की मृत्यु कहीं अच्छी है।"

दमनक ने जब संजीवक को युद्ध के लिये तैयार देखा तो वह सोचने लगा, कहीं ऐसा न हो कि यह अपने पैने सींगों से स्वामी पिंगलक का पेट फाड़ दे। ऐसा हो गया तो महान् अनर्थ हो जायगा। इसलिये वह फिर संजीवक को देश छोड़ कर जाने की प्रेरणा करता हुआ बोला—"मित्र! तुम्हारा कहना भी सच है। किन्तु, स्वामी और नौकर के युद्ध से क्या लाभ? विपक्षी बलवान् हो तो क्रोध को पी जाना ही बुद्धिमत्ता है। बलवान् से लड़ना अच्छा नहीं। अन्यथा उसकी वही गति होती है जो समुद्र से लड़ने वाली टिटिहरी की हुई थी।"

संजीवक ने पूछा—"कैसे?"

दमनक ने तब मूर्ख टिटिहरी की यह कथा सुनाई—

६.
ड़े-पत्थर का न्याय

'बलवन्तं रिपुं दृष्ट्वा नैवात्मानं प्रकोपयेत्'.

. . . .

शत्रु अधिक बलशाली हो तो क्रोध को प्रगट न करे, शान्त हो जाय ।

. . . .

समुद्रतट के एक भाग में एक टिटिहरी का जोड़ा रहता था। देने से पहले टिटिहरी ने अपने पति को किसी सुरक्षित ा की खोज करने के लिये कहा। टिटिहरे ने कहा—"यहां ा स्थान पर्याप्त सुरक्षित हैं, तू चिन्ता न कर।"

टिटिहरी—"समुद्र में जब ज्वार आता है तो उसकी लहरें ाले हाथी को भी खींच कर ले जाती हैं, इसलिये हमें इन ों से दूर कोई स्थान देख रखना चाहिये।"

टिटिहरा—"समुद्र इतना दुःसाहसी नहीं है कि वह मेरी ान को हानि पहुँचाये। वह मुझ से डरता है। इसलिये तू ांक होकर यहीं तट पर अंडे दे दे।"

समुद्र ने टिटिहरे की ये बातें सुनलीं। उसने सोचा—"यह ःहरा बहुत अभिमानी है। आकाश की ओर टांगें करके भी

यह इसीलिये सोता है कि इन टांगों पर गिरते हुए आकाश को थाम लेगा। इसके अभिमान का भंग होना चाहिये।" यह सोचकर उसने ज्वार आने पर टिटिहरी के अंडों को लहरों में बहा दिया।

टिटिहरी जब दूसरे दिन आई तो अंडों को बहता देखकर रोती-बिलखती टिटिहरे से बोली—"मूर्ख! मैंने पहिले ही कहा था कि समुद्र की लहरें इन्हें बहा ले जायंगी। किन्तु तूने अभिमानवश मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। अपने प्रियजनों के कथन पर भी जो कान नहीं देता उसकी वही दुर्गति होती है जो उस मूर्ख कछुए की हुई थी जिसने रोकते-रोकते भी मुख खोल दिया था।"

टिटिहरे ने टिटिहरी से पूछा—"कैसे?"

टिटिहरी ने तब मूर्ख कछुए की यह कहानी सुनाई—

१०.

हितैषी की सीख मानो

सुहृदां हितकामानां न करोतीह यो वचः ।
स कूर्म इव दुर्बुद्धिः काष्ठाद्भ्रष्टो विनश्यति ॥

. . . .

हितचिन्तक मित्रों की बात पर जो ध्यान
नहीं देता वह मूर्ख नष्ट हो जाता है ।

. . . .

एक तालाब में कंबुग्रीव नाम का कछुआ रहता था । उसी तालाब में प्रति दिन आने वाले दो हंस, जिनका नाम संकट और विकट था, उसके मित्र थे । तीनों में इतना स्नेह था कि रोज़ शाम होने तक तीनों मिलकर बड़े प्रेम से कथालाप किया करते थे ।

कुछ दिन बाद वर्षा के अभाव में वह तालाब सूखने लगा । हंसों को यह देखकर कछुए से बड़ी सहानुभूति हुई । कछुए ने भी आंखों में आंसू भर कर कहा—"अब यह जीवन अधिक दिन का नहीं है । पानी के बिना इस तालाब में मेरा मरण निश्चित है । तुमसे कोई उपाय बन पाए तो करो । विपत्ति में धैर्य ही काम आता है । यत्न से सब काम सिद्ध हो जाते हैं ।

बहुत विचार के बाद यह निश्चय किया गया कि दोनों हंस जंगल से एक बांस की छड़ी लायेंगे। कछुआ उस छड़ी के मध्य भाग को मुख से पकड़ लेगा। हंसों का यह काम होगा कि वे दोनों ओर से छड़ी को मज़बूती से पकड़कर दूसरे तालाब के किनारे तक उड़ते हुए पहुँचेंगे।

यह निश्चय होने के बाद दोनों हंसों ने कछुए को कहा—"मित्र ! हम तुझे इस प्रकार उड़ते हुए दूसरे तालाब तक ले जायेंगे। किन्तु एक बात का ध्यान रखना। कहीं बीच में लकड़ी को मत छोड़ देना। नहीं तो तू गिर जायगा। कुछ भी हो, पूरा मौन बनाए रखना। प्रलोभनों की ओर ध्यान न देना। यह तेरी परीक्षा का मौक़ा है।"

हंसों ने लकड़ी को उठा लिया। कछुए ने उसे मध्य भाग से दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया। इस तरह निश्चित योजना के अनुसार वे आकाश में उड़े जा रहे थे कि कछुए ने नीचे झुक कर उन शहरियों को देखा, जो गरदन उठाकर आकाश में हंसों के बीच किसी चक्राकार वस्तु को उड़ता देखकर कौतूहलवश शोर मचा रहे थे।

उस शोर को सुनकर कम्बुग्रीव से नहीं रहा गया। वह बोल उठा—"अरे ! यह शोर कैसा है ?"

यह कहने के लिये मुख खोलने के साथ ही कछुए के मुख से लकड़ी की छड़ छूट गई। और कछुआ जब नीचे गिरा तो लोभी मछियारों ने उसकी बोटी-बोटी कर डाली।

टिटिहरी ने यह कहानी सुना कर कहा—"इसी लिये मैं कहती हूँ कि अपने हितचिन्तकों की राय पर न चलने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

इसके अतिरिक्त बुद्धिमानों में भी वही बुद्धिमान सफल होते हैं जो बिना आई विपत्ति का पहले से ही उपाय सोचते हैं, और जिनकी बुद्धि तत्काल अपनी रक्षा का उपाय सोच लेती है। 'जो होगा, देखा जायगा' कहने वाले शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।"

टिटिहरे ने पूछा—"यह कैसे ?"

टिटिहरी ने कहा—"सुनो—

११.

दूरदर्शी बनो

'यद्भविष्यो विनश्यति'

. . . .

'जो होगा देखा जायगा'
कहने वाले नष्ट हो जाते हैं।

. . . .

एक तालाब में तीन मछलियां थीं; अनागत विधाता, प्रत्युत्पन्न-मति और यद्भविष्य। एक दिन मछियारों ने उन्हें देख लिया और सोचा—'इस तालाब में खूब मछलियां हैं। आज तक कभी इसमें जाल भी नहीं डाला है, इसलिये यहां खूब मछलियां हाथ लगेंगी।' उस दिन शाम अधिक हो गई थी, खाने के लिये मछलियां भी पर्याप्त मिल चुकी थीं, अतः अगले दिन सुबह ही वहां आने का निश्चय करके वे चले गये।

'अनागत विधाता' नाम की मछली ने उनकी बात सुनकर सब मछलियों को बुलाया और कहा—"आपने उन मछियारों की बात सुन ही ली है, अब रातों-रात ही हमें यह तालाब छोड़कर दूसरे तालाब में चले जाना चाहिये। एक क्षण की भी देर करना उचित नहीं।"

'प्रत्युत्पन्नमति' ने भी उसकी बात का समर्थन किया। उसने कहा—"परदेस में जाने का डर प्रायः सबको नपुँसक बना देता है। 'अपने ही कूएँ का जल पीयेंगे'—यह कह कर जो लोग जन्म भर खारा पानी पीते हैं, वे कायर होते हैं। स्वदेश का यह राग वही गाते हैं, जिनकी कोई और गति नहीं होती।"

उन दोनों की बातें सुनकर 'यद्भविष्य' नाम की मछली हंस पड़ी। उसने कहा—"किसी राह-जाते आदमी के वचनमात्र से डर कर हम अपने पूर्वजों के देश को नहीं छोड़ सकते। दैव अनुकूल होगा तो हम यहां भी सुरक्षित रहेंगे, प्रतिकूल होगा तो अन्यत्र जाकर भी किसी के जाल में फँस जायंगे। मैं तो नहीं जाती, तुम्हें जाना हो तो जाओ।"

उसका आग्रह देखकर 'अनागत विधाता' और 'प्रत्युत्पन्नमति' दोनों सपरिवार पास के तालाब में चली गईं। 'यद्भविष्य' अपने परिवार के साथ उसी तालाब में रही। अगले दिन सुबह मछियारों ने उस तालाब में जाल फैला कर सब मछलियों को पकड़ लिया।

इसीलिये मैं कहती हूँ कि 'जो होगा, देखा जायगा' की नीति विनाश की ओर ले जाती है। हमें प्रत्येक विपत्ति का उचित उपाय करना चाहिये।"

× × × ×

यह बात सुनकर टिटिहरे ने टिटिहरी से कहा—मैं 'यद्भविष्य' जैसा मूर्ख और निष्कर्म नहीं हूँ। मेरी बुद्धि का चमत्कार देखती

जा, मैं अभी अपनी चोंच से पानी बाहिर निकाल कर समुद्र को सुखा देता हूँ।"

टिटिहरी—"समुद्र के साथ तेरा वैर तुझे शोभा नहीं देता। इस पर क्रोध करने से क्या लाभ ? अपनी शक्ति देखकर हमें किसी से वैर करना चाहिये। नहीं तो आग में जलने वाले पतंगे जैसी गति होगी।"

टिटिहरा फिर भी अपनी चोंचों से समुद्र को सुखा डालने की डींगें मारता रहा। तब, टिटिहरी ने फिर उसे मना करते हुए कहा कि जिस समुद्र को गंगा-यमुना जैसी सैंकड़ों नदियां निरन्तर पानी से भर रही हैं उसे तू अपने बूंद-भर उठाने वाली चोंचों से कैसे खाली कर देगा ?

टिटिहरा तब भी अपने हठ पर तुला रहा। तब, टिटिहरी ने कहा—"यदि तूने समुद्र को सुखाने का हठ ही कर लिया है तो अन्य पक्षियों की भी सलाह लेकर काम कर। कई बार छोटे २ प्राणी मिलकर अपने से बहुत बड़े जीव को भी हरा देते हैं; जैसे चिड़िया, कठफोड़े और मेंढक ने मिलकर हाथी को मार दिया था।

टिटिहरे ने पूछा—"कैसे ?"

टिटिहरी ने तब चिड़िया और हाथी की यह कहानी सुनाई—

१२.

एक और एक ग्यारह

बहूनामप्यसाराणां समवायोहि दुर्जयः।

. . . .

छोटे और निर्बल भी संख्या में बहुत होकर
दुर्जेय हो जाते हैं।

. . . .

जंगल में वृक्ष की एक शाखा पर चिड़ा-चिड़ी का जोड़ा रहता था। उनके अंडे भी उसी शाखा पर बने घोंसले में थे। एक दिन एक मतवाला हाथी वृक्ष की छाया में विश्राम करने आया। वहां उसने अपनी सूंड में पकड़कर वही शाखा तोड़ दी जिस पर चिड़ियों का घोंसला था। अंडे ज़मीन पर गिर कर टूट गये।

चिड़िया अपने अंडों के टूटने से बहुत दुःखी हो गई। उसका विलाप सुनकर उसका मित्र कठफोड़ा भी वहां आ गया। उसने शोकातुर चिड़ा-चिड़ी को धीरज बंधाने का बहुत यत्न किया, किन्तु उनका विलाप शान्त नहीं हुआ। चिड़िया ने कहा—"यदि तू हमारा सच्चा मित्र है तो मतवाले हाथी से बदला लेने में हमारी सहायता कर। उसको मार कर ही हमारे मन को शान्ति मिलेगी।"

कठफोड़े ने कुछ सोचने के बाद कहा—"यह काम हम दोनों का ही नहीं है। इसमें दूसरों से भी सहायता लेनी पड़ेगी। एक मक्खी मेरी मित्र है; उसकी आवाज़ बड़ी सुरीली है। उसे भी बुला लेता हूँ।"

मक्खी ने भी जब कठफोड़े और चिड़िया की बात सुनी तो वह मतवाले हाथी के मारने में उनका सहयोग देने को तैयार हो गई। किन्तु उसने भी कहा कि "यह काम हम तीन का ही नहीं, हमें औरों की भी सहायता ले लेनी चाहिए। मेरा मित्र एक मेंढक है, उसे भी बुला लाऊँ।"

तीनों ने जाकर मेघनाद नाम के मेंढक को अपनी दुःखभरी कहानी सुनाई। मेंढक उनकी बात सुनकर मतवाले हाथी के विरुद्ध षड़यन्त्र में शामिल हो गया। उसने कहा—"जो उपाय मैं बतलाता हूँ, वैसा ही करो तो हाथी अवश्य मर जायगा। पहले मक्खी हाथी के कान में वीणा सदृश मीठे स्वर का आलाप करे। हाथी उसे सुनकर इतना मस्त हो जायगा कि आंखें बन्द करलेगा। कठफोड़ा उसी समय हाथी की आंखों को चोंचें खुभो-खुभो कर फोड़ दे। अन्धा होकर हाथी जब पानी की खोज में इधर-उधर भागेगा तो मैं एक गहरे गड्ढे के किनारे बैठकर आवाज़ करूँगा। मेरी आवाज़ से वह वहां तालाब होने का अनुमान करेगा और उधर ही आयेगा। वहां आकर वह गड्ढे को तालाब समझकर उसमें उतर जायगा। उस गड्ढे से निकलना उसकी शक्ति से बाहिर होगा। देर तक भूखा-प्यासा रहकर वह वहीं मर जायगा।"

अन्त में, मेंढक की बात मानकर सब ने मिल-जुल कर हाथी को मार ही डाला।

× × ×

टिटिहरी ने कहा—"तभी तो मैं कहती हूँ कि छोटे और निर्बल भी मिलजुल कर बड़े-बड़े जानवरों को मार सकते हैं।"

टिटिहरा—"अच्छी बात है। मैं भी दूसरे पक्षियों की सहायता से समुद्र को सुखाने का यत्न करूँगा।"

यह कहकर उसने बगुले, सारस, मोर आदि अनेक पक्षियों को बुलाकर अपनी दुःख-कथा सुनाई। उन्होंने कहा—'हम तो अशक्त हैं, किन्तु हमारा मित्र गरुड़ अवश्य इस संबन्ध में हमारी सहायता कर सकता है।' तब, सब पक्षी मिलकर गरुड़ के पास जाकर रोने और चिल्लाने लगे—"गरुड़ महाराज! आप के रहते हमारे पक्षिकुल पर समुद्र ने यह अत्याचार कर दिया। हम इसका बदला चाहते हैं। आज उसने टिटिहरी के अंडे नष्ट किये हैं, कल वह दूसरे पक्षियों के अंडों को बहा ले जायगा। इस अत्याचार की रोक-थाम होनी चाहिये। अन्यथा संपूर्ण पक्षिकुल नष्ट हो जायगा।"

गरुड़ ने पक्षियों का रोना सुनकर उनकी सहायता करने का निश्चय किया। उसी समय उसके पास भगवान् विष्णु का दूत आया। उस दूत द्वारा भगवान विष्णु ने उसे सवारी के लिये बुलाया था। गरुड़ ने दूत से क्रोधपूर्वक कहा कि वह विष्णु भगवान को कह दे कि वह दूसरी सवारी का प्रबन्ध कर लें। दूत

ने गरुड़ के क्रोध का कारण पूछा तो गरुड़ ने समुद्र के अत्याचार की कथा सुनाई।

दूत के मुख से गरुड़ के क्रोध की कहानी सुनकर भगवान विष्णु स्वयं गरुड़ के घर गये। वहाँ पहुँचने पर गरुड़ ने प्रणाम-पूर्वक विनम्र शब्दों में कहा—

"भगवन्! आप के आश्रय का अभिमान करके समुद्र ने मेरे साथी पक्षियों के अंडों का अपहरण कर लिया है। इस तरह मुझे भी अपमानित किया है। मैं समुद्र से इस अपमान का बदला लेना चाहता हूँ।"

भगवान विष्णु बोले—"गरुड़! तुम्हारा क्रोध युक्तियुक्त है। समुद्र को ऐसा काम नहीं करना चाहिये था। चलो, मैं अभी समुद्र से उन अंडों को वापिस लेकर टिटिहरी को दिलवा देता हूँ। उसके बाद हमें अमरावती जाना है।"

तब भगवान ने अपने धनुष पर 'आग्नेय' बाण को चढ़ाकर समुद्र से कहा—"दुष्ट! अभी उन सब अंडों को वापिस देदे, नहीं तो तुझे क्षण भर में सुखा दूंगा।"

भगवान विष्णु के भय से समुद्र ने उसी क्षण अंडे वापिस दे दिये।

× × ×

दमनक ने इन कथाओं को सुनाने के बाद संजीवक से कहा—"इसीलिये मैं कहता हूँ कि शत्रु-पक्ष का बल जानकर ही युद्ध के लिये तैयार होना चाहिये।"

संजीवक—"दमनक ! यह बात तो सच है, किन्तु मुझे यह कैसे पता लगेगा कि पिंगलक के मन में मेरे लिये हिंसा के भाव हैं। आज तक वह मुझे सदा स्नेह की दृष्टि से देखता रहा है। उसकी वक्रदृष्टि का मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मुझे उसके लक्षण बतला दो तो मैं उन्हें जानकर आत्म-रक्षा के लिये तैयार हो जाऊँगा।"

दमनक—"उन्हें जानना कुछ भी कठिन नहीं है। यदि उसके मन में तुम्हें मारने का पाप होगा तो उसकी आँखें लाल हो जायँगी, भवें चढ़ जाएँगी और वह होठों को चाटता हुआ तुम्हारी ओर क्रूर दृष्टि से देखेगा। अच्छा तो यह है कि तुम रातों-रात चुपके से चले जाओ। आगे तुम्हारी इच्छा।"

❀ ❀ ❀

यह कहकर दमनक अपने साथी करटक के पास आया। करटक ने उससे भेंट करते हुए पूछा—"कहो दमनक ! कुछ सफलता मिली तुम्हें अपनी योजना में ?"

दमनक—"मैंने तो नीतिपूर्वक जो कुछ भी करना उचित था कर दिया, आगे सफलता दैव के अधीन है। पुरुषार्थ करने के बाद भी यदि कार्यसिद्धि न हो तो हमारा दोष नहीं।"

करटक—"तेरी क्या योजना है ? किस तरह नीतियुक्त काम किया है तूने ? मुझे भी बता।"

दमनक—"मैंने झूठ बोलकर दोनों को एक दूसरे का ऐसा

वैरी बना दिया है कि वे भविष्य में कभी एक दूसरे का विश्वास नहीं करेंगे।"

करटक—"यह तूने अच्छा नहीं किया मित्र! दो स्नेही हृदयों में द्वेष का बीज बोना बुरा काम है।"

दमनक—"करटक! तू नीति की बातें नहीं जानता, तभी ऐसा कहता है। संजीवक ने हमारे मन्त्री पद को हथिया लिया था। वह हमारा शत्रु था। शत्रु को परास्त करने में धर्म-अधर्म नहीं देखा जाता। आत्मरक्षा सब से बड़ा धर्म है। स्वार्थसाधन ही सब से महान् कार्य है। स्वार्थ-साधन करते हुए कपट-नीति से ही काम लेना चाहिये—जैसे चतुरक ने लिया था।"

करटक ने पूछा—"कैसे?"

दमनक ने तब चतुरक गीदड़ और शेर की यह कहानी सुनाई—

१३.

कुटिल नीति का रहस्य

> "परस्यपीडनं कुर्वन्स्वार्थसिद्धिं च पंडितः।
> गूढबुद्धिर्न लक्षयेत वने चतुरको यथा॥"
>
> . . . .
>
> स्वार्थ साधन करते हुए कपट से ही काम लेना पड़ता है।
>
> . . . .

किसी जंगल में एक वज्रदंष्ट्र नाम का शेर रहता था। उसके दो अनुचर—चतुरक गीदड़ और क्रव्यमुख भेड़िया—हर समय उसके साथ रहते थे। एक दिन शेर ने जंगल में बैठी हुई ऊँटनी को मारा। ऊँटनी के पेट में एक छोटा-सा ऊँट का बच्चा निकला। शेर को उस बच्चे पर दया आई। घर लाकर उसने बच्चे को कहा—"अब मुझ से डरने की कोई बात नहीं। मैं तुझे नहीं मारूँगा। तू जंगल में आनन्द से विहार कर।" ऊँट के बच्चे के कान शंकु (कील) जैसे थे, इसलिये उसका नाम शेर ने शंकुकर्ण रख दिया। वह भी शेर के अन्य अनुचरों के समान सदा शेर के साथ रहता था। जब वह बड़ा हो गया, तो भी वह शेर का

मित्र बना रहा। एक क्षण के लिये भी वह शेर को छोड़कर नहीं जाता था।

एक दिन उस जंगल में एक मतवाला हाथी आ गया। उससे शेर की ज़बर्दस्त लड़ाई हुई। इस लड़ाई में शेर इतना घायल हो गया कि उसके लिये एक क़दम आगे चलना भी भारी हो गया। अपने साथियों से उसने कहा कि "तुम कोई ऐसा शिकार ले आओ जिसे मैं यहाँ बैठा-बैठा ही मार दूं।" तीनों साथी शेर की आज्ञा अनुसार शिकार की तलाश करते रहे—लेकिन बहुत यत्न करने पर भी कोई शिकार हाथ नहीं आया।

चतुरक ने सोचा, यदि शंकुकर्ण को मरवा दिया जाय तो कुछ दिन की निश्चिन्तता हो जाय। किन्तु शेर ने इसे अभय वचन दिया है; कोई युक्ति ऐसी निकालनी चाहिये कि वह वचन-भंग किये बिना इसे मारने को तैयार हो जाय।

अन्त में चतुरक ने एक युक्ति सोच ली। शंकुकर्ण को वह बोला—"शंकुकर्ण ! मैं तुझे एक बात तेरे लाभ की ही कहता हूँ। स्वामी का भी इसमें कल्याण हो जायगा। हमारा स्वामी शेर कई दिन से भूखा है। उसे यदि तू अपना शरीर देदे तो वह कुछ दिन बाद दुगना होकर तुझे मिल जायगा, और शेर को भी तृप्ति हो जायगी।"

शंकुकर्ण—"मित्र ! शेर की तृप्ति में तो मेरी भी प्रसन्नता है। स्वामी को कह दो कि मैं इसके लिये तैयार हूँ। किन्तु, इस सौदे में धर्म हमारा साक्षी होगा।"

इतना निश्चित होने के बाद वे सब शेर के पास गये। चतुरक ने शेर से कहा—"स्वामी! शिकार तो कोई भी हाथ नहीं आया। सूर्य भी अस्त हो गया। अब एक ही उपाय है; यदि आप शंकुकर्ण को इस शरीर के बदले द्विगुण शरीर देना स्वीकार करें तो वह यह शरीर ऋण रूप में देने को तैयार है।"

शेर—'मुझे यह व्यवहार स्वीकार है। हम धर्म को साक्षी रखकर यह सौदा करेंगे। शंकुकर्ण अपने शरीर को ऋण रूप में हमें देगा तो हम उसे बाद में द्विगुण शरीर देंगे।"

तब सौदा होने के बाद शेर के इशारे पर गीदड़ और भेड़िये ने ऊँट को मार दिया।

वज्रदंष्ट्र शेर ने तब चतुरक से कहा—'चतुरक! मैं नदी में स्नान करके आता हूं, तू यहाँ इसकी रखवाली करना।'

शेर के जाने के बाद चतुरक ने सोचा, कोई युक्ति ऐसी होनी चाहिए कि वह अकेला ही ऊँट को खा सके। यह सोचकर वह क्रव्यमुख से बोला—"मित्र! तू बहुत भूखा है, इसलिए तू शेर के आने से पहले ही ऊँट को खाना शुरू कर दे। मैं शेर के सामने तेरी निर्दोषता सिद्ध कर दूंगा, चिन्ता न कर।"

अभी क्रव्यमुख ने दाँत गड़ाए ही थे कि चतुरक चिल्ला उठा—"स्वामी आ रहे हैं, दूर हट जा।"

शेर ने आकर देखा तो ऊँट पर भेड़िये के दाँत लगे थे। उसने क्रोध से भवें तानकर पूछा—"किसने ऊँट को जूठा किया है?" क्रव्यमुख चतुरक की ओर देखने लगा। चतुरक बोला—

"दुष्ट ! स्वयं मांस खाकर अब मेरी ओर क्यों देखता है ? अ अपने किये का दंड भोग ।"

चतुरक की बात सुनकर भेड़िया शेर के डर से उसी क्ष भाग गया ।

थोड़ी देर में उधर कुछ दूरी पर ऊँटों का एक क़ाफ़ला अ रहा था । ऊँटों के गले में घंटियाँ बँधी हुई थीं । घंटियों के शब से जंगल का आकाश गूंज रहा था । शेर ने पूछा—"चतुरक यह कैसा शब्द है ? मैं तो इसे पहली बार ही सुन रहा हूँ, पत तो करो ।"

चतुरक बोला—"स्वामी ! आप देर न करें, जल्दी से चं जायं ।"

शेर—"आख़िर बात क्या है ? इतना भयभीत क्यों करत है मुझे ?"

चतुरक—स्वामी ! यह ऊँटों का दल है । धर्मराज आप प बहुत क्रुद्ध हैं । आपने उनकी आज्ञा के बिना उन्हें साक्षी बन कर अकाल में ही ऊँट के बच्चे को मार डाला है । अब वह १० ऊँटों को, जिनमें शंकुकर्ण के पुरखे भी शामिल हैं, लेकर तुम बदला लेने आया है । धर्मराज के विरुद्ध लड़ना युक्तियुक्त नहीं आप, हो सके तो तुरन्त भाग जाइये ।"

शेर ने चतुरक के कहने पर विश्वास कर लिया । धर्मराज डर कर वह मरे हुए ऊँट को वैसा ही छोड़कर दूर भाग गया ।

दमनक ने यह कथा सुनाकर कहा—"इसी लिये मैं तुम्हें कहता हूँ कि स्वार्थसाधन में छल-बल सब से काम ले।"

❀ ❀ ❀

दमनक के जाने के बाद संजीवक ने सोचा, 'मैंने यह अच्छा नहीं किया जो शाकाहारी होने पर एक मांसाहारी से मैत्री की। किन्तु अब क्या करूँ? क्यों न अब फिर पिंगलक की शरण जाकर उससे मित्रता बढ़ाऊँ? दूसरी जगह अब मेरी गति भी कहाँ है?'

यही सोचता हुआ वह धीरे-धीरे शेर के पास चला। वहाँ जाकर उसने देखा कि पिंगलक शेर के मुख पर वही भाव अंकित थे जिनका वर्णन दमनक ने कुछ समय पहले किया था। पिंगलक को इतना क्रुद्ध देखकर संजीवक आज ज़रा दूर हटकर बिना प्रणाम किये बैठ गया। पिंगलक ने भी आज संजीवक के चेहरे पर वही भाव अंकित देखे जिनकी सूचना दमनक ने पिंगलक को दी थी। दमनक की चेतावनी का स्मरण करके पिंगलक संजीवक से कुछ भी पूछे बिना उस पर टूट पड़ा। संजीवक इस अचानक आक्रमण के लिये तैयार नहीं था। किन्तु जब उसने देखा कि शेर उसे मारने को तैयार है तो वह भी सींगों को तानकर अपनी रक्षा के लिये तैयार हो गया।

उन दोनों को एक दूसरे के विरुद्ध भयंकरता से युद्ध करते देखकर करटक ने दमनक से कहा—

"दमनक! तूने दो मित्रों को लड़वा कर अच्छा नहीं किया। तुझे सामनीति से काम लेना चाहिये था। अब यदि शेर का वध

हो गया तो हम क्या करेंगे ? सच तो यह है कि तेरे जैसा नीच स्वभाव का मन्त्री कभी अपने स्वामी का कल्याण नहीं कर सकता। अब भी कोई उपाय है तो कर। तेरी सब प्रवृत्तियाँ केवल विनाशोन्मुख हैं। जिस राज्य का तू मन्त्री होगा, वहाँ भद्र और सज्जन व्यक्तियों का प्रवेश ही नहीं होगा।

अथवा, अब तुझे उपदेश देने का क्या लाभ ? उपदेश भी पात्र को दिया जाता है। तू उसका पात्र नहीं है। तुझे उपदेश देना व्यर्थ है। अन्यथा कहीं मेरी हालत भी सूचीमुख चिड़िया की तरह न हो जाय !

दमनक ने पूछा—'सूचीमुख कौन थी ?'

करकट ने तब सूचीमुख चिड़िया की यह कहानी सुनाई—

१४.

सीख न दीजे वानरा

"उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये"

. . . .

उपदेश से मूर्खों का क्रोध और भी भड़क उठता है, शांत नहीं होता।

. . . .

किसी पर्वत के एक भाग में बन्दरों का दल रहता था। एक दिन हेमन्त मास के दिनों में वहां इतनी बर्फ पड़ी और ऐसी हिम-वर्षा हुई कि बन्दर सर्दी के मारे ठिठुर गए।

कुछ बन्दर लाल फलों को ही अग्नि-कण समझ कर उन्हें फूकें मार-मारकर सुलगाने की कोशिश करने लगे।

सूचीमुख पक्षी ने तब उन्हें वृथा प्रयत्न से रोकते हुए कहा—"ये आग के शोले नहीं, गुञ्जाफल हैं। इन्हें सुलगाने की व्यर्थ चेष्टा क्यों करते हो? अच्छा तो यह है कि कहीं गुफा-कन्दरा देखकर उसमें चले जाओ। तभी सर्दी से रक्षा होगी।"

बन्दरों में एक बूढ़ा बन्दर भी था। उसने कहा—"सूचीमुख! इनको उपदेश न दे। ये मूर्ख हैं, तेरे उपदेश को नहीं मानेंगे, बल्कि तुझे पकड़कर मार डालेंगे।"

वह बन्दर यह कह ही रहा था कि एक बन्दर ने सूचीमुख को उसके पंखों से पकड़ कर झकझोर दिया।

× × ×

इसीलिए मैं कहता हूँ कि मूर्ख को उपदेश देकर हम उसे शान्त नहीं करते, और भी भड़काते हैं। जिस-तिस को उपदेश देना स्वयं मूर्खता है। मूर्ख बन्दर ने उपदेश देने वाली चिड़ियों का घोंसला तोड़ दिया था।

दमनक ने पूछा—"कैसे ?"

करटक ने तब बन्दर और चिड़ियों की यह कहानी सुनाई—

१५.

शिक्षा का पात्र

उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने ।

. . . .

जिस-तिस को उपदेश देना उचित नहीं ।

. . . .

किसी जंगल के एक घने वृक्ष की शाखाओं पर चिड़ा-चिड़ी का एक जोड़ा रहता था। अपने घोंसले में दोनों बड़े सुख से रहते थे। सर्दियों का मौसम था। एक दिन हेमन्त की ठंडी हवा चलने लगी और साथ में बूंदा-बांदी भी शुरू हो गई। उस समय एक बन्दर बर्फीली हवा और बरसात से ठिठुरता हुआ उस वृक्ष की शाखा पर आ बैठा। जाड़े के मारे उसके दांत कटकटा रहे थे। उसे देखकर चिड़िया ने कहा—"अरे! तुम कौन हो? देखने में तो तुम्हारा चेहरा आदमियों का सा है; हाथ-पैर भी हैं तुम्हारे। फिर भी तुम यहाँ बैठे हो, घर बनाकर क्यों नहीं रहते?"

बन्दर बोला—"अरी! तुझ से चुप नहीं रहा जाता? तू अपना काम कर। मेरा उपहास क्यों करती है?"

चिड़िया फिर भी कुछ कहती गई। वह चिड़ गया। क्रोध में

आकर उसने चिड़िया के उस घोंसले को तोड़-फोड़ डाला जिसमें चिड़ा-चिड़ी सुख से रहते थे।

× × ×

करटक ने कहा—"इसीलिये मैं कहता था कि जिस-तिस को उपदेश नहीं देना चाहिये। किन्तु, तुझ पर इसका कुछ प्रभाव नहीं। तुझे शिक्षा देना भी व्यर्थ है। बुद्धिमान् को दी हुई शिक्षा का ही फल होता है, मूर्ख को दी हुई शिक्षा का फल कई बार उल्टा निकल आता है, जिस तरह पापबुद्धि नाम के मूर्ख पुत्र ने विद्वत्ता के जोश में पिता की हत्या करदी थी।

दमनक ने पूछा—"कैसे ?"

करटक ने तब धर्मबुद्धि-पापबुद्धि नाम के दो मित्रों की यह कथा सुनाई—

१६.

मित्र-द्रोह का फल

'किं करोत्येव पाण्डित्यमस्थाने विनियोजितम्'

• • • •

अयोग्य को मिले ज्ञान का फल विपरीत ही होता है।

• • • •

किसी स्थान पर धर्मबुद्धि और पापबुद्धि नाम के दो मित्र रहते थे। एक दिन पापबुद्धि ने सोचा कि धर्मबुद्धि की सहायता से विदेश में जाकर धन पैदा किया जाय। दोनों ने देश-देशान्तरों में घूमकर प्रचुर धन पैदा किया। जब वे वापिस आ रहे थे तो गाँव के पास आकर पापबुद्धि ने सलाह दी कि इतने धन को बन्धु-बान्धवों के बीच नहीं ले जाना चाहिये। इसे देखकर उन्हें ईर्ष्या होगी, लोभ होगा। किसी न किसी बहाने वे बाँटकर खाने का यत्न करेंगे। इसलिये इस धन का बड़ा भाग ज़मीन में गाड़ देते हैं। जब ज़रूरत होगी, लेते रहेंगे।

धर्मबुद्धि यह बात मान गया। ज़मीन में गड्ढ़ा खोद कर दोनों ने अपना सञ्चित धन वहाँ रख दिया और गाँव में चले आए।

कुछ दिन बाद पापबुद्धि आधी रात को उसी स्थान पर जाकर

सारा धन खोद लाया और ऊपर से मिट्टी डालकर गड्ढा भरकर घर चला आया।

दूसरे दिन वह धर्मबुद्धि के पास गया और कहा—"मित्र! मेरा परिवार बड़ा है। मुझे फिर कुछ धन की ज़रूरत पड़ गई है। चलो, चलकर थोड़ा-थोड़ा और ले आवें।"

धर्मबुद्धि मान गया। दोनों ने जाकर जब ज़मीन खोदी और वह बर्तन निकाला, जिस में धन रखा था, तो देखा कि वह खाली है। पापबुद्धि सिर पीटकर रोने लगा—"मैं लुट गया, धर्मबुद्धि ने मेरा धन चुरा लिया, मैं मर गया, लुट गया...।"

दोनों अदालत में धर्माधिकारी के सामने पेश हुए। पापबुद्धि ने कहा—"मैं गड्ढे के पास वाले वृक्षों को साक्षी मानने को तैयार हूँ। वे जिसे चोर कहेंगे, वह चोर माना जाएगा।"

अदालत ने यह बात मान ली, और निश्चय किया कि कल वृक्षों की साक्षी ली जायगी और उस साक्षी पर ही निर्णय सुनाया जायगा।

रात को पापबुद्धि ने अपने पिता से कहा—"तुम अभी गड्ढे के पास वाले वृक्ष की खोखली जड़ में बैठ जाओ। जब धर्माधिकारी पूछे तो कह देना कि चोर धर्मबुद्धि है।"

उसके पिता ने यही किया। वह सुबह होने से पहले ही वहाँ जाकर बैठ गया।

धर्माधिकारी ने जब ऊँचे स्वर से पुकारा—"हे वनदेवता! तुम्हीं साक्षी दो कि इन दोनों में चोर कौन है?"

तब वृक्ष की जड़ में बैठे हुए पापबुद्धि के पिता ने कहा—"धर्मबुद्धि चोर है, उसने ही धन चुराया है।"

धर्माधिकारी तथा राजपुरुषों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अभी अपने धर्मग्रन्थों को देखकर निर्णय देने की तैयारी ही कर रहे थे कि धर्मबुद्धि ने उस वृक्ष को आग लगा दी, जहाँ से वह आवाज़ आई थी।

थोड़ी देर में पापबुद्धि का पिता आग से झुलसा हुआ उस वृक्ष की जड़ में से निकला। उसने वनदेवता की साक्षी का सच्चा भेद प्रकट कर दिया।

तब राजपुरुषों ने पापबुद्धि को उसी वृक्ष की शाखाओं पर लटकाते हुए कहा कि मनुष्य का यह धर्म है कि वह उपाय की चिन्ता के साथ अपाय की भी चिन्ता करे। अन्यथा उसकी वही दशा होती है जो उन बगलों की हुई थी, जिन्हें नेवले ने मार दिया था।

धर्मबुद्धि ने पूछा—"कैसे ?"

राजपुरुषों ने कहा—"सुनो—

१७.

करने से पहले सोचो

'उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथाऽपायं च चिन्तयेत्'

. . . .

उपाय की चिन्ता के साथ, तज्जन्य अपाय या दुष्परिणाम की भी चिन्ता कर लेनी चाहिए।

. . . .

जंगल के एक बड़े वट-वृक्ष की खोल में बहुत से बगले रहते थे। उसी वृक्ष की जड़ में एक साँप भी रहता था। वह बगलों के छोटे-छोटे बच्चों को खा जाता था।

एक बगला साँप द्वारा बार-बार बच्चों के खाये जाने पर बहुत दुःखी और विरक्त सा होकर नदी के किनारे आ बैठा। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। उसे इस प्रकार दुःखमग्न देखकर एक केकड़े ने पानी से निकल कर उसे कहा :—"मामा! क्या बात है, आज रो क्यों रहे हो?"

बगले ने कहा—"भैया! बात यह है कि मेरे बच्चों को साँप बार-बार खा जाता है। कुछ उपाय नहीं सूझता, किस प्रकार साँप का नाश किया जाय। तुम्हीं कोई उपाय बताओ।"

केकड़े ने मन में सोचा, 'यह बगला मेरा जन्मवैरी है, इसे ऐसा उपाय बताऊंगा, जिससे साँप के नाश के साथ-साथ इसका भी नाश हो जाय।' यह सोचकर वह बोला—

"मामा ! एक काम करो, मांस के कुछ टुकड़े लेकर नेवले के बिल के सामने डाल दो। इसके बाद बहुत से टुकड़े उस बिल से शुरू करके साँप के बिल तक बखेर दो। नेवला उन टुकड़ों को खाता-खाता साँप के बिल तक आ जायगा और वहाँ साँप को भी देखकर उसे मार डालेगा।"

बगले ने ऐसा ही किया। नेवले ने साँप को तो खा लिया किन्तु साँप के बाद उस वृक्ष पर रहने वाले बगलों को भी खा डाला।

बगले ने उपाय तो सोचा, किन्तु उसके अन्य दुष्परिणाम नहीं सोचे। अपनी मूर्खता का फल उसे मिल गया। पाप-बुद्धि ने भी उपाय तो सोचा, किन्तु अपाय नहीं सोचा।"

❀ ❀ ❀

करटक ने कहा—"इसी तरह दमनक ! तू ने भी उपाय तो किया, किन्तु अपाय की चिन्ता नहीं की। तू भी पाप-बुद्धि के समान ही मूर्ख है। तेरे जैसे पाप-बुद्धि के साथ रहना भी दोषपूर्ण है! आज से तू मेरे पास मत आना। जिस स्थान पर ऐसे अनर्थ हों वहाँ से दूर ही रहना चाहिए। जहां चूहे मन भर की तराज़ू को खा जायं वहाँ यह भी सम्भव है कि चील बच्चे को उठा कर ले जाय।"

दमनक ने पूछा—"कैसे ?"

करटक ने तब लोहे की तराज़ू की यह कहानी सुनाई—

१८.

जैसे को तैसा

तुलां लोहसहस्रस्य यत्र खादन्ति मूषिकाः ।
राजंस्तत्र हरेच्छ्येनो बालकं नात्र संशयः ॥

. . . .

जहां मन भर लोहे की तराजू को चूहे खा
जाएं वहां की चील भी बच्चे को उठा कर
ले जा सकती है ।

. . . .

एक स्थान पर जीर्णधन नाम का बनिये का लड़का रहता था । धन की खोज में उसने परदेश जाने का विचार किया । उसके घर में विशेष सम्पत्ति तो थी नहीं, केवल एक मन भर भारी लोहे की तराजू थी । उसे एक महाजन के पास धरोहर रखकर वह विदेश चला गया । विदेश से वापिस आने के बाद उसने महाजन से अपनी धरोहर वापिस मांगी । महाजन ने कहा—"वह लोहे की तराजू तो चूहों ने खा ली ।"

बनिये का लड़का समझ गया कि वह उस तराजू को देना नहीं चाहता । किन्तु अब उपाय कोई नहीं था । कुछ देर सोचकर उसने कहा—"कोई चिन्ता नहीं । चूहों ने खा डाली तो चूहों का

दोष है, तुम्हारा नहीं। तुम इसकी चिन्ता न करो।"

थोड़ी देर बाद उसने महाजन से कहा—"मित्र! मैं नदी पर स्नान के लिए जा रहा हूँ। तुम अपने पुत्र धनदेव को मेरे साथ भेज दो, वह भी नहा आयेगा।"

महाजन बनिये की सज्जनता से बहुत प्रभावित था, इसलिए उसने तत्काल अपने पुत्र को उसके साथ नदी-स्नान के लिए भेज दिया।

बनिये ने महाजन के पुत्र को वहाँ से कुछ दूर ले जाकर एक गुफा में बन्द कर दिया। गुफा के द्वार पर बड़ी सी शिला रख दी, जिससे वह बचकर भाग न पाये। उसे वहाँ बंद करके जब वह महाजन के घर आया तो महाजन ने पूछा—"मेरा लड़का भी तो तेरे साथ स्नान के लिए गया था, वह कहाँ है?"

बनिये ने कहा—"उसे चील उठा कर ले गई है।"

महाजन—"यह कैसे हो सकता है? कभी चील भी इतने बड़े बच्चे को उठा कर ले जा सकती है?"

बनिया—"भले आदमी! यदि चील बच्चे को उठाकर नहीं ले जा सकती तो चूहे भी मन भर भारी तराजू को नहीं खा सकते। तुझे बच्चा चाहिए तो तराजू निकाल कर दे दे।"

इसी तरह विवाद करते हुए दोनों राजमहल में पहुँचे। वहाँ न्यायाधिकारी के सामने महाजन ने अपनी दुःख-कथा सुनाते हुए कहा कि, "इस बनिये ने मेरा लड़का चुरा लिया है।"

धर्माधिकारी ने बनिये से कहा—"इसका लड़का इसे दे दो।

बनिया बोला—"महाराज ! उसे तो चील उठा ले गई है।"

धर्माधिकारी—"क्या कभी चील भी बच्चे को उठा ले जा सकती है ?"

बनिया—"प्रभु ! यदि मन भर भारी तराज़ू को चूहे खा सकते हैं तो चील भी बच्चे को उठाकर ले जा सकती है।"

धर्माधिकारी के प्रश्न पर बनिये ने अपनी तराज़ू का सब वृत्तान्त कह सुनाया।

× × ×

कहानी कहने के बाद दमनक को करटक ने फिर कहा कि—"तूने भी असम्भव को सम्भव बनाने का यत्न किया है। तूने स्वामी का हितचिन्तक होते अहित कर दिया है। ऐसे हितचिन्तक मूर्ख मित्रों की अपेक्षा अहितचिन्तक वैरी अच्छे होते हैं। हित-चिन्तक मूर्ख बन्दर ने हितसंपादन करते-करते राजा का खून ही कर दिया था।"

दमनक ने पूछा—"कैसे ?"

करटक ने तब बन्दर और राजा की यह कहानी सुनाई—

१६.

मूर्ख मित्र

पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः ।

. . . .

हितचिन्तक मूर्ख की अपेक्षा अहित चिन्तक बुद्धिमान अच्छा होता है

. . . .

किसी राजा के राजमहल में एक बन्दर सेवक के रूप में रहता था। वह राजा का बहुत विश्वास-पात्र और भक्त था। अन्तःपुर में भी वह बेरोक-टोक जा सकता था।

एक दिन जब राजा सो रहा था और बन्दर पङ्खा झल रहा था तो बन्दर ने देखा, एक मक्खी बार-बार राजा की छाती पर बैठ जाती थी। पंखे से बार-बार हटाने पर भी वह मानती नहीं थी, उड़कर फिर वहीं बैठ जाती थी।

बन्दर को क्रोध आ गया। उसने पंखा छोड़ कर हाथ में तलवार ले ली; और इस बार जब मक्खी राजा की छाती पर बैठी तो उसने पूरे बल से मक्खी पर तलवार का हाथ छोड़ दिया। मक्खी तो उड़ गई, किन्तु राजा की छाती तलवार की चोट से दो टुकड़े हो गई। राजा मर गया।

× × ×

कथा सुना कर करटक ने कहा—"इसीलिए मैं मूर्ख मित्र की अपेक्षा विद्वान् शत्रु को अच्छा समझता हूँ।"

❀ ❀ ❀

इधर दमनक करटक बात-चीत कर रहे थे, उधर शेर और बैल का संग्राम चल रहा था। शेर ने थोड़ी देर बाद बैल को इतना घायल कर दिया कि वह ज़मीन पर गिर कर मर गया।

मित्र-हत्या के बाद पिंगलक को बड़ा पश्चात्ताप हुआ, किन्तु दमनक ने आकर पिंगलक को फिर राजनीति का उपदेश दिया। पिंगलक ने दमनक को फिर अपना प्रधानमन्त्री बना लिया। दमनक की इच्छा पूरी हुई। पिंगलक दमनक की सहायता से राज्य-कार्य करने लगा।

॥ प्रथम तन्त्र समाप्त ॥

द्वितीय तन्त्र—

मित्रसम्प्राप्ति

इस तन्त्र में—

दक्षिण देश के एक प्रान्त में महिलारोप्य नाम का एक नगर था। वहाँ एक विशाल वटवृक्ष की शाखाओं पर लघुपतनक नाम का कौवा रहता था। एक दिन वह अपने आहार की चिन्ता में शहर की ओर चला ही था कि उसने देखा कि एक काले रंग, फटे पाँव और बिखरे बालों वाला यमदूत की तरह भयंकर व्याध उधर ही चला आ रहा है। कौवे को वृक्ष पर रहने वाले अन्य पक्षियों की भी चिन्ता थी। उन्हें व्याध के चंगुल से बचाने के लिए वह पीछे लौट पड़ा और वहाँ सब पक्षियों को सावधान कर दिया कि जब यह व्याध वृक्ष के पास भूमि पर अनाज के दाने बखेरे, तब कोई भी पक्षी उन्हें चुगने के लालच से न जाय, उन दानों को कालकूट की तरह जहरीला समझे।

कौवा अभी यह कह ही रहा था कि व्याध ने वटवृक्ष के नीचे आकर दाने बखेर दिये और स्वयं दूर जाकर झाड़ी के पीछे

छिप गया। पक्षियों ने भी लघुपतनक का उपदेश मानकर दाने नहीं चुगे। वे उन दानों को हलाहल विष की तरह मानते रहे।

किन्तु, इसी बीच में व्याध के सौभाग्य से कबूतरों का एक दल परदेश से उड़ता हुआ वहाँ आया। इसका मुखिया चित्रग्रीव नाम का कबूतर था। लघुपतनक के बहुत समझाने पर भी वह भूमि पर बिखरे हुए उन दानों को चुगने के लालच को न रोक सका। परिणाम यह हुआ कि वह अपने परिवार के साथियों समेत जाल में फँस गया। लोभ का यही परिणाम होता है। लोभ से विवेकशक्ति नष्ट हो जाती है। स्वर्णमय हिरण के लोभ से श्रीराम यह न सोच सके कि कोई भी हिरण सोने का नहीं हो सकता।

जाल में फँसने के बाद चित्रग्रीव ने अपने साथी कबूतरों को समझा दिया कि वे अब अधिक फड़फड़ाने या उड़ने की कोशिश न करें, नहीं तो व्याध उन्हें मार देगा। इसीलिये वे सब अधमरे से हुए जाल में बैठ गए। व्याध ने भी उन्हें शान्त देखकर मारा नहीं। जाल समेट कर वह आगे चल पड़ा। चित्रग्रीव ने जब देखा कि अब व्याध निश्चिन्त हो गया है और उसका ध्यान दूसरी ओर गया है, तभी उसने अपने साथियों को जाल समेत उड़ जाने का संकेत किया। संकेत पाते ही सब कबूतर जाल लेकर उड़ गये। व्याध को बहुत दुःख हुआ। पक्षियों के साथ उसका जाल भी हाथ से निकल गया था। लघुपतनक भी उन उड़ते हुए कबूतरों के साथ उड़ने लगा।

चित्रग्रीव ने जब देखा कि अब व्याध का डर नहीं है तो

उसने अपने साथियों को कहा—"व्याध तो लौट गया। अब चिन्ता की कोई बात नहीं। चलो, हम महिलारोप्य शहर के पूर्वोत्तर भाग की ओर चलें। वहाँ मेरा घनिष्ट मित्र हिरण्यक नाम का चूहा रहता है। उससे हम अपने जाल को कटवा लेंगे। तभी हम आकाश में स्वच्छन्द घूम सकेंगे।

वहाँ हिरण्यक नाम का चूहा अपनी १०० बिलों वाले दुर्ग में रहता था। इसीलिये उसे डर नहीं लगता था। चित्रग्रीव ने उसके द्वार पर पहुंच कर आवाज़ लगाई। वह बोला—"मित्र हिरण्यक! शीघ्र आओ। मुझ पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है।"

उसकी आवाज़ सुनकर हिरण्यक ने अपने ही बिल में छिपे-छिपे प्रश्न किया—"तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? क्या प्रयोजन है?......"

चित्रग्रीव ने कहा—"मैं चित्रग्रीव नाम का कपोतराज हूँ। तुम्हारा मित्र हूँ। तुम जल्दी बाहर आओ; मुझे तुम से विशेष काम है।"

यह सुनकर हिरण्यक चूहा अपने बिल से बाहिर आया। वहाँ अपने परममित्र चित्रग्रीव को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। किन्तु चित्रग्रीव को अपने साथियों समेत जाल में फँसा देखकर वह चिन्तित भी हो गया। उसने पूछा—"मित्र! यह क्या होगया तुम्हें?" चित्रग्रीव ने कहा—"जीभ के लालच से हम जाल में फँस गये। तुम हमें जाल से मुक्त कर दो।"

हिरण्यक जब चित्रग्रीव के जाल का धागा काटने लगा तब

उसने कहा—"पहले मेरे साथियों के बन्धन काट दो, बाद में मेरे काटना।"

हिरण्यक - "तुम सब के सरदार हो, पहले अपने बन्धन कटवा लो, साथियों के पीछे कटवाना।"

चित्रग्रीव—"वे मेरे आश्रित हैं, अपने घरबार को छोड़कर मेरे साथ आये हैं। मेरा धर्म है कि पहले इनकी सुखसुविधा को दृष्टि में रखूँ। अपने अनुचरों में किया हुआ विश्वास बड़े से बड़े संकट से रक्षा करता है।"

हिरण्यक चित्रग्रीव की यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सब के बन्धन काटकर चित्रग्रीव से कहा—"मित्र! अब अपने घर जाओ। विपत्ति के समय फिर मुझे याद करना।" उन्हें भेजकर हिरण्यक चूहा अपने बिल में घुस गया। चित्रग्रीव भी परिवारसहित अपने घर चला गया।

❀ ❀ ❀

लघुपतनक कौवा यह सब दूर से देख रहा था। वह हिरण्यक के कौशल और उसकी सज्जनता पर मुग्ध हो गया। उसने मन ही मन सोचा—'यद्यपि मेरा स्वभाव है कि मैं किसी का विश्वास नहीं करता, किसी को अपना हितैषी नहीं मानता, तथापि इस चूहे के गुणों से प्रभावित होकर मैं इसे अपना मित्र बनाना चाहता हूँ।"

यह सोचकर वह हिरण्यक के बिल के दरवाजे पर जाकर चित्रग्रीव के समान ही आवाज़ बनाकर हिरण्यक को पुकारने

लगा। उसकी आवाज़ सुनकर हिरण्यक ने सोचा, यह कौन-सा कबूतर है ? क्या इसके बन्धन कटने शेष रह गये हैं ?

हिरण्यक ने पूछा—"तुम कौन हो ?"

लघुपतनक—"मैं लघुपतनक नाम का कौवा हूँ।"

हिरण्यक—"मैं तुम्हें नहीं जानता, तुम अपने घर चले जाओ।"

लघुपतनक—"मुझे तुम से बहुत ज़रूरी काम है; एक बार दर्शन तो दे दो।"

हिरण्यक—"मुझे तुम्हें दर्शन देने का कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता।"

लघुपतनक—"चित्रग्रीव के बन्धन काटते देखकर मुझे तुमसे बहुत प्रेम हो गया है। कभी मैं भी बन्धन में पड़ जाऊँगा तो तुम्हारी सेवा में आना पड़ेगा।"

हिरण्यक—"तुम भोक्ता हो, मैं तुम्हारा भोजन हूँ; हम में प्रेम कैसा ? जाओ, दो प्रकृति से विरोधी जीवों में मैत्री नहीं हो सकती।"

लघुपतनक—"हिरण्यक ! मैं तुम्हारे द्वार पर मित्रता की भीख लेकर आया हूँ। तुम मैत्री नहीं करोगे तो यहीं प्राण दे दूंगा।"

हिरण्यक—"हम सहज-वैरी हैं, हममें मैत्री नहीं हो सकती।"

लघुपतनक—"मैंने तो कभी तुम्हारे दर्शन भी नहीं किए। हम में वैर कैसा ?"

हिरण्यक—"वैर दो तरह का होता है : सहज और कृत्रिम। तुम मेरे सहज-वैरी हो।"

लघुपतनक—"मैं दो तरह के वैरों का लक्षण सुनना चाहता हूँ।"

हिरण्यक—"जो वैर कारण से हो वह कृत्रिम होता है, कारणों से ही उस वैर का अन्त भी हो सकता है। स्वाभाविक वैर निष्कारण होता है, उसका अन्त हो ही नहीं सकता।"

लघुपतनक ने बहुत अनुरोध किया, किन्तु हिरण्यक ने मैत्री के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। तब लघुपतनक ने कहा—"यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास न हो तो तुम अपने बिल में छिपे रहो; मैं बिल के बाहर बैठा-बैठा ही तुम से बातें कर लिया करूँगा।"

हिरण्यक ने लघुपतनक की यह बात मान ली। किन्तु, लघुपतनक को सावधान करते हुए कहा—"कभी मेरे बिल में प्रवेश करने की चेष्टा मत करना।" कौवा इस बात को मान गया। उसने शपथ ली कि कभी वह ऐसा नहीं करेगा।

तब से वे दोनों मित्र बन गये। नित्यप्रति परस्पर बातचीत करते थे। दोनों के दिन बड़े सुख से कटते थे। कौवा कभी-कभी इधर-उधर से अन्न संग्रह करके चूहे को भेंट में भी देता था मित्रता में यह आदान-प्रदान स्वाभाविक था। धीरे-धीरे दोनों की मैत्री घनिष्ट होती गई। दोनों एक क्षण भी एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे।

बहुत दिन बाद एक दिन आँखों में आँसू भर कर लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा—"मित्र ! अब मुझे इस देश से विरक्ति हो गई है, इसलिये दूसरे देश में चला जाऊँगा।"

कारण पूछने पर उसने कहा—"इस देश में अनावृष्टि के कारण दुर्भिक्ष पड़ गया है। लोग स्वयं भूखे मर रहे हैं, एक दाना भी नहीं रहा। घर-घर में पक्षियों के पकड़ने के लिए जाल बिछ गए हैं। मैं तो भाग्य से ही बच गया। ऐसे देश में रहना ठीक नहीं है।"

हिरण्यक—"कहाँ जाओगे ?"

लघुपतनक—"दक्षिण दिशा की ओर एक तालाब है। वहाँ मन्थरक नाम का एक कछुआ रहता है। वह भी मेरा वैसा ही घनिष्ठ मित्र है जैसे तुम हो। उसकी सहायता से मुझे पेट भरने योग्य अन्न-मांस आदि अवश्य मिल जाएगा।"

हिरण्यक—"यही बात है तो मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा। मुझे भी यहाँ बड़ा दुःख है।"

लघुपतनक—"तुम्हें किस बात का दुःख है ?"

हिरण्यक—"यह मैं वहीं पहुँचकर तुम्हें बताऊँगा।"

लघुपतनक—"किन्तु, मैं तो आकाश में उड़ने वाला हूँ। मेरे साथ तुम कैसे जाओगे ?"

हिरण्यक—"मुझे अपने पंखों पर बिठा कर वहाँ ले चलो।"

लघुपतनक यह बात सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि वह संपात, आदि आठों प्रकार की उड़ने की गतियों से परिचित है।

वह उसे सुरक्षित निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। यह सुनकर हिरण्यक चूहा लघुपतनक कौवे की पीठ पर बैठ गया। दोनों आकाश में उड़ते हुए तालाब के किनारे पहुँचे।

मन्थरक ने जब देखा कि कोई कौवा चूहे को पीठ पर बिठा कर आरहा है तो वह डर के मारे पानी में घुस गया। लघुपतनक को उसने पहचाना नहीं।

तब लघुपतनक हिरण्यक को थोड़ी दूर छोड़कर पानी में लटकती हुई शाखा पर बैठ कर ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगा—"मन्थरक ! मन्थरक !! मैं तेरा मित्र लघुपतनक आया हूँ। आकर मुझ से मिल।"

लघुपतनक की आवाज़ सुनकर मन्थरक खुशी से नाचता हुआ बाहिर आया। दोनों ने एक दूसरे का आलिंगन किया। हिरण्यक भी तब वहां आगया और मन्थरक को प्रणाम करके वहीं बैठ गया।

मन्थरक ने लघुपतनक से पूछा—"यह चूहा कौन है ? भक्ष्य होते हुए भी तू इसे अपनी पीठ पर कैसे लाया ?"

लघुपतनक—"यह हिरण्यक नाम का चूहा मेरा अभिन्न मित्र है। बड़ा गुणी है यह; फिर भी किसी दुःख से दुःखी होकर मेरे साथ यहाँ आ गया है। इसे अपने देश से वैराग्य हो गया है।"

मन्थरक—"वैराग्य का कारण ?

लघुपतनक—"यह बात मैंने भी पूछी थी। इसने कहा था, वहीं चलकर बतलाऊँगा। मित्र हिरण्यक ! अब तुम अपने वैराग्य का कारण बतलाओ।"

हिरण्यक ने तब यह कहानी सुनाई—

१.

धन सब क्लेशों की जड़ है

दक्षिण देश के एक प्रान्त में महिलारोप्य नामक नगर से थोड़ी दूर महादेवजी का एक मन्दिर था। वहाँ ताम्रचूड़ नाम का भिक्षु रहता था। वह नगर से भिक्षा माँगकर भोजन कर लेता था और भिक्षा-शेष को भिक्षा-पात्र में रखकर खूंटी पर टांग देता था। सुबह उसी भिक्षा-शेष में से थोड़ा २ अन्न वह अपने नौकरों को बांट देता था और उन नौकरों से मन्दिर की लिपाई-पुताई और सफ़ाई कराता था।

एक दिन मेरे कई जाति-भाई चूहों ने मेरे पास आकर कहा—"स्वामी! वह ब्राह्मण खूंटी पर भिक्षा-शेष वाला पात्र टांग देता है, जिससे हम उस पात्र तक नहीं पहुँच सकते। आप चाहें तो खूंटी पर टंगे पात्र तक पहुँच सकते हैं। आपकी कृपा से हमें भी प्रतिदिन उस में से अन्न-भोजन मिल सकता है।

उनकी प्रार्थना सुनकर मैं उन्हें साथ लेकर उसी रात वहाँ पहुँचा। उछलकर मैं खूंटी पर टंगे पात्र तक पहुँच गया। वहाँ से अपने साथियों को भी मैंने भरपेट अन्न दिया और स्वयं भी खूब खाया। प्रतिदिन इसी तरह मैं अपना और अपने साथियों का पेट पालता रहा।

ताम्रचूड़ ब्राह्मण ने इस चोरी का एक उपाय किया। वह कहीं से बांस का डंडा ले आया और उससे रात भर खूंटी पर टंगे पात्र को खटखटाता रहता। मैं भी बांस से पिटने के डर से पात्र में नहीं जाता था। सारी रात यही संघर्ष चलता रहता।

कुछ दिन बाद उस मन्दिर में बृहत्स्फिक्क नाम का एक संन्यासी अतिथि बनकर आया। ताम्रचूड़ ने उसका बहुत सत्कार किया। रात के समय दोनों में देर तक धर्म-चर्चा भी होती रही। किन्तु ताम्रचूड़ ने उस चर्चा के बीच भी फटे बांस से भिक्षापात्र को खटकाने का कार्यक्रम चालू रखा। आगन्तुक संन्यासी को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने समझा कि ताम्रचूड़ उसकी बात को पूरे ध्यान से नहीं सुन रहा। इसे उसने अपना अपमान भी समझा। इसीलिये अत्यन्त क्रोधाविष्ट होकर उसने कहा—"ताम्रचूड़! तू मेरे साथ मैत्री नहीं निभा रहा। मुझ से पूरे मन से बात भी नहीं करता। मैं भी इसी समय तेरा मन्दिर छोड़कर दूसरी जगह चला जाता हूँ।"

ताम्रचूड़ ने डरते हुए उत्तर दिया—"मित्र, तू मेरा अनन्य मित्र है। मेरी व्यग्रता का कारण दूसरा है; वह यह कि यह दुष्ट चूहा खूंटी पर टंगे भिक्षापात्र में से भी भोज्य वस्तुओं को चुराकर खा जाता है। चूहे को डराने के लिये ही मैं भिक्षापात्र को खटका रहा हूँ। इस चूहे ने तो उछलने में बिल्ली और बन्दर को भी मात कर दिया है।"

बृहत्स्फिक्क—"उस चूहे का बिल तुझे मालूम है?"

ताम्रचूड़—"नहीं, मैं नहीं जानता।"

बृहत्स्फिक—"हो न हो इसका बिल भूमि में गड़े किसी ख़ज़ाने के ऊपर है; तभी, उसकी गर्मी से यह इतना उछलता है। कोई भी काम अकारण नहीं होता। कूटे हुए तिलों को यदि कोई बिना कूटे तिलों के भाव बेचने लगे तो भी उसका कारण होता है।

ताम्रचूड़ ने पूछा कि, "कूटे हुए तिलों का उदाहरण आप ने कैसे दिया?"

बृहत्स्फिक ने तब कूटे हुए तिलों की बिक्री की यह कहानी सुनाई—

२.

बिन कारण कार्य नहीं

"हेतुरत्रभविष्यति"

. . . .

हर काम के कारण की खोज करो,
अकारण कुछ भी नहीं हो सकता ।

. . . .

एक बार मैं चौमासे में एक ब्राह्मण के घर गया था । वहाँ रहते हुए एक दिन मैंने सुना कि ब्राह्मण और ब्राह्मण-पत्नी में यह बातचीत हो रही थी—

ब्राह्मण—"कल सुबह कर्क-संक्रान्ति है, भिक्षा के लिये मैं दूसरे गाँव जाऊँगा । वहाँ एक ब्राह्मण सूर्यदेव की तृप्ति के लिए कुछ दान करना चाहता है ।"

पत्नी—"तुझे तो भोजन योग्य अन्न कमाना भी नहीं आता । तेरी पत्नी होकर मैंने कभी सुख नहीं भोगा, मिष्टान्न नहीं खाये, वस्त्र और आभूषणों की तो बात ही क्या कहनी ?"

ब्राह्मण—"देवी ! तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए । अपनी इच्छा के अनुरूप धन किसी को नहीं मिलता । पेट भरने योग्य अन्न तो मैं भी ले ही आता हूँ । इससे अधिक की तृष्णा का त्याग कर दो । अति तृष्णा के चक्कर में मनुष्य के माथे पर शिखा हो जाती है ।"

ब्राह्मणी ने पूछा—"यह कैसे ?"

तब ब्राह्मण ने सूअर-शिकारी और गीदड़ की यह कथा सुनाई—

३.

अति लोभ नाश का मूल

अतितृष्णा न कर्त्तव्या, तृष्णां नैव परित्यजेत् ।

. . . .

लोभ तो स्वाभाविक है, किन्तु अतिशय लोभ मनुष्य का सर्वनाश कर देता है ।

. . . .

एक दिन एक शिकारी शिकार की खोज में जंगल की ओर गया । जाते-जाते उसे वन में काले अंजन के पहाड़ जैसा काला बड़ा सूअर दिखाई दिया । उसे देखकर उसने अपने धनुष की प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर निशाना मारा । निशाना ठीक स्थान पर लगा । सूअर घायल होकर शिकारी की ओर दौड़ा । शिकारी भी तीखे दाँतों वाले सूअर के हमले से गिरकर घायल होगया । उसका पेट फट गया । शिकारी और शिकार दोनों का अन्त हो गया ।

इस बीच एक भटकता और भूख से तड़पता गीदड़ वहाँ आ निकला । वहाँ सूअर और शिकारी, दोनों को मरा देखकर वह सोचने लगा, "आज दैववश बड़ा अच्छा भोजन

मिला है। कई बार बिना विशेष उद्यम के ही अच्छा भोजन मिल जाता है। इसे पूर्वजन्मों का फल ही कहना चाहिए।"

यह सोचकर वह मृत लाशों के पास जाकर पहले छोटी चीजें खाने लगा। उसे याद आगया कि अपने धन का उपयोग मनुष्य को धीरे-धीरे ही करना चाहिये; इसका प्रयोग रसायन के प्रयोग की तरह करना उचित है। इस तरह अल्प से अल्प धन भी बहुत काल तक काम देता है। अतः इनका भोग मैं इस रीतिसे करूँगा कि बहुत दिन तक इनके उपभोग से ही मेरी प्राणयात्रा चलती रहे।

यह सोचकर उसने निश्चय किया कि वह पहले धनुष की डोरी को खायगा। उस समय धनुष की प्रत्यंचा चढ़ी हुई थी; उसकी डोरी कमान के दोनों सिरों पर कसकर बँधी हुई थी। गीदड़ ने डोरी को मुख में लेकर चबाया। चबाते ही वह डोरी बहुत वेग से टूट गई; और धनुष के कोने का एक सिरा उसके माथे को भेद कर ऊपर निकल आया, मानो माथे पर शिखा निकल आई हो। इस प्रकार घायल होकर वह गीदड़ भी वहीं मर गया।

❀ ❀ ❀

ब्राह्मण ने कहा—"इसीलिये मैं कहता हूँ कि अतिशय लोभ से माथे पर शिखा हो जाती है।"

ब्राह्मणी ने ब्राह्मण की यह कहानी सुनने के बाद कहा—"यदि यही बात है तो मेरे घर में थोड़े से तिल पड़े हैं। उनका शोधन करके कूट छाँटकर अतिथि को खिला देती हूँ।"

ब्राह्मण उसकी बात से सन्तुष्ट होकर भिक्षा के लिये दूसरे

गाँव की ओर चल दिया। ब्राह्मणी ने भी अपने वचनानुसार घर में पड़े तिलों को छाँटना शुरू कर दिया। छाँट-पछोड़ कर जब उसने तिलों को सुखाने के लिये धूप में फैलाया तो एक कुत्ते ने उन तिलों को मूत्र-विष्ठा से खराब कर दिया। ब्राह्मणी बड़ी चिन्ता में पड़ गई। यही तिल थे, जिन्हें पकाकर उसने अतिथि को भोजन देना था। बहुत विचार के बाद उसने सोचा कि अगर वह इन शोधित तिलों के बदले अशोधित तिल माँगेगी तो कोई भी दे देगा। इनके उच्छिष्ट होने का किसी को पता ही नहीं लगेगा। यह सोचकर वह उन तिलों को छाज में रखकर घर-घर घूमने लगी और कहने लगी—"कोई इन छँटे हुए तिलों के स्थान पर बिना छँटे तिल देदे।"

अचानक यह हुआ कि जिस घर में मैं भिक्षा के लिये गया था उसी घर में वह भी तिलों को बेचने पहुँच गई, और कहने लगी कि—"बिना छँटे हुए तिलों के स्थान पर छँटे हुए तिलों को ले लो।" उस घर की गृहपत्नी जब यह सौदा करने जा रही थी तब उसके लड़के ने, जो अर्थशास्त्र पढ़ा हुआ था, कहा—

"माता! इन तिलों को मत लो। कौन पागल होगा जो बिना छँटे तिलों को लेकर छँटे हुए तिल देगा। यह बात निष्कारण नहीं हो सकती। अवश्यमेव इन छँटे तिलों में कोई दोष होगा।"

पुत्र के कहने से माता ने यह सौदा नहीं किया।

❀ ❀ ❀

यह कहानी सुनाने के बाद बृहत्स्फिक ने ताम्रचूड़ से पूछा—

"क्या तुम्हें उसके आने-जाने का मार्ग मालूम है ?"

ताम्रचूड़—"भगवन् ! वह तो मालूम नहीं। वह अकेला नहीं आता, दलबल समेत आता है। उनके साथ ही वह आता है और साथ ही जाता है।"

बृहत्स्फक—"तुम्हारे पास कोई फावड़ा है ?"

ताम्रचूड़ ने कहा—"हा, फावड़ा तो है।"

दोनों ने दूसरे दिन फावड़ा लेकर हमारे (चूहों के) पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए मेरे बिल तक आने का निश्चय किया। मैं उनकी बातें सुनकर बड़ा चिन्तित हुआ। मुझे निश्चय हो गया कि वे इस तरह मेरे दुर्ग तक पहुँच कर फावड़े से उसे नष्ट कर देंगे। इसलिये मैंने सोचा कि मैं अपने दुर्ग की ओर न जाकर किसी अन्य स्थान की ओर चल देता हूँ। इस तरह सीधा रास्ता छोड़-कर दूसरे रास्ते से जब मैं सदलबल जा रहा था तो मैंने देखा कि एक मोटा बिल्ला आ रहा है। वह बिल्ला चूहों की मंडली देखकर उस पर टूट पड़ा। बहुत से चूहे मारे गए, बहुत से घायल हुए। एक भी चूहा ऐसा न था जो लहूलुहान न हुआ हो। उन सब ने इस विपत्ति का कारण मुझे ही माना। मैं ही उन्हें असली रास्ते के स्थान पर दूसरे रास्ते से ले जा रहा था। बाद में उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया। वे सब पुराने दुर्ग में चले गये।

इस बीच बृहत्स्फिक और ताम्रचूड़ भी फावड़ा समेत दुर्ग तक पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने दुर्ग को खोदना शुरू कर दिया। खोदते-खोदते उनके हाथ वह ख़ज़ाना लग गया, जिसकी

गर्मी से मैं बन्दर और बिल्ली से भी अधिक उछल सकता था। खज़ाना लेकर दोनों ब्राह्मण मन्दिर को लौट गए। मैं जब अपने दुर्ग में गया तो उसे उजड़ा देखकर मेरा दिल बैठ गया। उसकी वह अवस्था देखी नहीं जाती थी। सोचने लगा, क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे मन को कहाँ शान्ति मिलेगी ?

बहुत सोचने के बाद मैं फिर निराशा में डूबा हुआ उसी मन्दिर में चला गया जहां ताम्रचूड़ रहता था। मेरे पैरों की आहट सुनकर ताम्रचूड़ ने फिर खूंटी पर टंगे भिक्षापात्र को फटे बाँस से पीटना शुरू कर दिया। बृहत्स्फिक ने उससे पूछा—

"मित्र! अब भी तू निःशंक होकर नहीं सोता। क्या बात है ?"

ताम्रचूड़—"भगवन्! वह चूहा फिर यहाँ आ गया है। मुझे डर है, मेरे भिक्षा-शेष को वह फिर न कहीं खा जाय।"

बृहत्स्फिक—"मित्र! अब डरने की कोई बात नहीं। धन के खज़ाने के साथ उसके उछलने का उत्साह भी नष्ट होगया। सभी जीवों के साथ ऐसा होता है। धन-बल से ही मनुष्य उत्साही होता है, वीर होता है और दूसरों को पराजित करता है।"

यह सुनकर मैंने पूरे बल से छलाँग मारी, किन्तु खूंटी पर टंगे पात्र तक न पहुँच सका, और मुख के बल ज़मीन पर गिर पड़ा। मेरे गिरने की आवाज़ सुनकर मेरा शत्रु बृहत्स्फिक ताम्रचूड़ से हँसकर बोला—

"देख, ताम्रचूड़! इस चूहे को देख। खज़ाना छिन जाने के

बाद वह फिर मामूली चूहा ही रह गया है। इसकी छलाँग में अब वह वेग नहीं रहा, जो पहले था। धन में बड़ा चमत्कार है। धन से ही सब बली होते हैं, पण्डित होते हैं। धन के बिना मनुष्य की अवस्था दन्त-हीन सांप की तरह हो जाती है।"

धनाभाव से मेरी भी बड़ी दुर्गति हो गई। मेरे ही नौकर मुझे उलाहना देने लगे कि यह चूहा हमारा पेट पालने योग्य तो है नहीं; हाँ, हमें बिल्ली को खिलाने योग्य अवश्य है। यह कहकर उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया। मेरे साथी मेरे शत्रुओं के साथ मिल गये।

मैंने भी एक दिन सोचा कि मैं फिर मन्दिर में जाकर ख़ज़ाना पाने का यत्न करूँगा। इस यत्न में मेरी मृत्यु भी हो जाय तो भी चिन्ता नहीं।

यह सोचकर मैं फिर मन्दिर में गया। मैंने देखा कि ब्राह्मण ख़ज़ाने की पेटी को सिर के नीचे रखकर सो रहे हैं। मैं पेटी में छिद्र करके जब धन चुराने लगा तो वे जाग गये। लाठी लेकर वे मेरे पीछे दौड़े। एक लाठी मेरे सिर पर लगी। आयु शेष थी इस लिये मृत्यु नहीं हुई—किन्तु, घायल बहुत हो गया। सच तो यह है कि जो धन भाग्य में लिखा होता है वह तो मिल ही जाता है। संसार की कोई शक्ति उसे हस्तगत होने में बाधा नहीं डाल सकती। इसीलिये मुझे कोई शोक नहीं है। जो हमारे हिस्से का है, वह हमारा अवश्य होगा।

इतनी कथा कहने के बाद हिरण्यक ने कहा—"इसीलिये

मुझे वैराग्य हो गया है। और इसीलिये मैं लघुपतनक की पीठ पर चढ़कर यहाँ आ गया हूँ।"

मन्थरक ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—

"मित्र! नष्ट हुए धन की चिन्ता न करो। जवानी और धन का उपभोग क्षणिक ही होता है। पहले धन के अर्जन में दुःख है; फिर उसके संरक्षण में दुःख। जितने कष्टों से मनुष्य धन का संचय करता है उसके शतांश कष्टों से भी यदि वह धर्म का संचय करे तो उसे मोक्ष मिल जाय। विदेश-प्रवास का भी दुःख मत करो। व्यवसायी के लिये कोई स्थान दूर नहीं, विद्वान् के लिये कोई विदेश नहीं और प्रियवादी के लिये कोई पराया नहीं।

"इसके अतिरिक्त धन कमाना तो भाग्य की बात है। भाग्य न हो तो संचित धन भी नष्ट हो जाता है। अभागा आदमी अर्थोपार्जन करके भी उसका भोग नहीं कर पाता; जैसे मूर्ख सोमिलक नहीं कर पाया था।"

हिरण्यक ने पूछा—"कैसे?"

मन्थरक ने तब सोमिलक की यह कथा सुनाई—

४.

कर्महीन नर पावत नाहिं

"अर्थस्योपार्जनं कृत्वा नैवाऽभाग्यः समश्नुते'
"करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति'

. . . .

भाग्य में न हो तो हाथ में आये धन का भी उपभोग
नहीं होता।

. . . .

एक नगर में सोमिलक नाम का जुलाहा रहता था। विविध प्रकार के रंगीन और सुन्दर वस्त्र बनाने के बाद भी उसे भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन कभी प्राप्त नहीं होता था। अन्य जुलाहे मोटा-सादा कपड़ा बुनते हुए धनी हो गये थे। उन्हें देखकर एक दिन सोमिलक ने अपनी पत्नी से कहा—"प्रिये! देखो, मामूली कपड़ा बुनने वाले जुलाहों नें भी कितना धन-वैभव संचित कर लिया है और मैं इतने सुन्दर, उत्कृष्ट वस्त्र बनाते हुए भी आज तक निर्धन ही हूँ। प्रतीत होता है यह स्थान मेरे लिये भाग्यशाली नहीं है; अतः विदेश जाकर धनोपार्जन करूँगा।"

सोमिलक-पत्नी ने कहा--"प्रियतम! विदेश में धनोपार्जन की कल्पना मिथ्या स्वप्न से अधिक नहीं। धन की प्राप्ति होनी हो तो

स्वदेश में ही हो जाती है। न होनी हो तो हथेली में आया धन भी नष्ट हो जाता है। अतः यहीं रहकर व्यवसाय करते रहो, भाग्य में लिखा होगा तो यहीं धन की वर्षा हो जायगी।"

सोमिलक—"भाग्य-अभाग्य की बातें तो कायर लोग करते हैं। लक्ष्मी उद्योगी और पुरुषार्थी शेर-नर को ही प्राप्त होती है। शेर को भी अपने भोजन के लिये उद्यम करना पड़ता है। मैं भी उद्यम करूँगा; विदेश जाकर धन-संचय का यत्न करूँगा।"

यह कहकर सोमिलक वर्धमानपुर चला गया। वहाँ तीन वर्षों में अपने कौशल से ३०० सोने की मुहरें लेकर वह घर की ओर चल दिया। रास्ता लम्बा था। आधे रास्ते में ही दिन ढल गया, शाम हो गई। आस-पास कोई घर नहीं था। एक मोटे वृक्ष की शाखा के ऊपर चढ़कर रात बिताई। सोते-सोते स्वप्न आया कि दो भयंकर आकृति के पुरुष आपस में बात कर रहे हैं। एक ने कहा—"हे पौरुष ! तुझे क्या मालूम नहीं है कि सोमिलक के पास भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता; तब तूने इसे ३०० मुहरें क्यों दीं ?" दूसरा बोला—"हे भाग्य! मैं तो प्रत्येक पुरुषार्थी को एक बार उसका फल दूंगा ही। उसे उसके पास रहने देना या नहीं रहने देना तेरे अधीन है।"

स्वप्न के बाद सोमिलक की नींद खुली तो देखा कि मुहरों का पात्र खाली था। इतने कष्टों से संचित धन के इस तरह लुप्त हो जाने से सोमिलक बड़ा दुःखी हुआ, और सोचने लगा—'अपनी पत्नी को कौनसा मुख दिखाऊँगा, मित्र क्या कहेंगे ?' यह सोचकर

वह फिर वर्धमानपुर को ही वापिस आ गया। वहाँ दिन-रात घोर परिश्रम करके उसने वर्ष भर में ही ५०० मुहरें जमा करलीं। उन्हें लेकर वह घर की ओर जा रहा था कि फिर आधे रास्ते में रात पड़ गई। इस बार वह सोने के लिये ठहरा नहीं; चलता ही गया। किन्तु चलते-चलते ही उसने फिर उन दोनों—पौरुप और भाग्य—को पहले की तरह बात-चीत करते सुना। भाग्य ने फिर वही बात कही कि—"हे पौरुष! क्या तुझे मालूम नहीं कि सोमिलक के पास भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता। तब, उसे तूने ५०० मुहरें क्यों दीं?" पौरुष ने वही उत्तर दिया—"हे भाग्य! मैं तो प्रत्येक व्यवसायी को एक बार उसका फल दूंगा ही, इससे आगे तेरे अधीन है कि उसके पास रहने दे या छीन ले।" इस बात-चीत के बाद सोमिलक ने जब अपनी मुहरों वाली गठरी देखी तो वह मुहरों से खाली थी।

इस तरह दो बार खाली हाथ होकर सोमिलक का मन बहुत दुःखी हुआ। उसने सोचा—"इस धन-हीन जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है। आज इस वृक्ष की टहनी से रस्सी बाँधकर उस पर लटक जाता हूँ और यहीं प्राण दे देता हूँ।"

गले में फन्दा लगा, उसे टहनी से बाँध कर जब वह लटकने ही वाला था कि उसे आकाश-वाणी हुई—"सोमिलक! ऐसा दुःसाहस मत कर। मैंने ही तेरा धन चुराया है। तेरे भाग्य में भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन का उपभोग नहीं लिखा। व्यर्थ के धन-संचय में अपनी शक्तियाँ नष्ट मत कर। घर जाकर सुख से रह।

तेरे साहस से तो मैं प्रसन्न हूँ; तू चाहे तो एक वरदान माँग ले। मैं तेरी इच्छा पूरी करूँगा।"

सोमिलक ने कहा—"मुझे वरदान में प्रचुर धन दे दो।"

अदृष्ट देवता ने उत्तर दिया—"धन का क्या उपयोग ? तेरे भाग्य में उसका उपभोग नहीं है। भोग-रहित धन को लेकर क्या करेगा ?"

सोमिलक तो धन का भूखा था, बोला—"भोग हो या न हो, मुझे धन ही चाहिये। बिना उपयोग या उपभोग के भी धन की बड़ी महिमा है। संसार में वही पूज्य माना जाता है, जिसके पास धन का संचय हो। कृपण और अकुलीन भी समाज में आदर पाते हैं। संसार उनकी ओर आशा लगाये बैठा रहता है; जिस तरह वह गीदड़ बैल से आशा रखकर उसके पीछे १५ वर्ष तक घूमता रहा।"

भाग्य ने पूछा—"किस तरह ?"

सोमिलक ने फिर बैल और गीदड़ की यह कहानी सुई—

५.

उड़ती के पीछे भागना

> यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवेत ।
> ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि ॥
>
> . . . .
>
> जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित के पीछे भटकता है उसका निश्चित धन भी नष्ट हो जाता है।
>
> . . . .

एक स्थान पर तीक्ष्णविषाण नाम का बैल रहता था। बहुत उन्मत्त होने के कारण उसे किसान ने छोड़ दिया था। अपने साथी बैलों से भी छूटकर वह जंगल में ही मतवाले हाथी की तरह बे रोक-टोक घूमा करता है।

उसी जंगल में प्रलोभक नाम का एक गीदड़ भी था। एक दिन वह अपनी पत्नी समेत नदी के किनारे बैठा था कि वह बैल वहीं पानी पीने आ गया। बैल के मांसल कन्धों पर लटकते हुए मांस को देखकर गीदड़ी ने गीदड़ से कहा—"स्वामी! इस बैल की लटकती हुई लोथ को देखो। न जाने किस दिन यह ज़मीन पर गिर जाय। तुम इसके पीछे-पीछे जाओ—जब यह ज़मीन पर गिरे, ले आना।"

गीदड़ ने उत्तर दिया—"प्रिये ! न जाने यह लोथ गिरे या न गिरे। कब तक इसका पीछा करूँगा ? इस व्यर्थ के काम में मुझे मत लगाओ। हम यहाँ चैन से बैठे हैं। जो चूहे इस रास्ते से जायेंगे उन्हें मारकर ही हम भोजन कर लेंगे। तुझे यहाँ अकेली छोड़कर जाऊँगा तो शायद कोई दूसरा गीदड़ ही इस घर को अपना बना ले। अनिश्चित लाभ की आशा में निश्चित वस्तु का परित्याग कभी अच्छा नहीं होता।"

गीदड़ी बोली—"मैं नहीं जानती थी कि तू इतना कायर और आलसी है। तुझ में इतना भी उत्साह नहीं है। जो थोड़े से धन से सन्तुष्ट हो जाता है वह थोड़े से धन को भी गंवा बैठता है। इसके अतिरिक्त अब मैं चूहे के मांस से ऊब गई हूँ। बैल के ये मांसपिण्ड अब गिरने ही वाले दिखाई देते हैं। इसलिए अब इसका पीछा करना ही चाहिए।"

गीदड़ी के आग्रह पर गीदड़ को बैल के पीछे जाना पड़ा। सच तो यह है कि पुरुष तभी तक प्रभु होता है जब तक उस पर स्त्री का अंकुश नहीं पड़ता। स्त्री का हठ पुरुष से सब कुछ करा देता है।

तब से गीदड़-गीदड़ी दोनों बैल के पीछे-पीछे घूमने लगे। उनकी आंखें उसके लटकते मांस-पिण्ड पर लगी थीं, लेकिन वह मांस-पिण्ड 'अब गिरा', 'तब गिरा' लगते हुए भी गिरता नहीं था। अन्त में १०-१५ वर्ष इसी तरह बैल का पीछा करने के बाद एक दिन गीदड़ ने कहा—"प्रिये ! न मालूम यह गिरे भी या नहीं

गिरे, इसलिए अब इसकी आशा छोड़कर अपनी राह लो।"

❀　　　　❀　　　　❀

कहानी सुनने के बाद पौरुष ने कहा—"यदि यही बात है, धन की इच्छा इतनी ही प्रबल है तो तू फिर वर्धमानपुर चला जा। वहां दो बनियों के पुत्र हैं; एक गुप्तधन, दूसरा उपभुक्त धन। इन दोनों प्रकार के धनों का स्वरूप जानकर तू किसी एक का वरदान मांगना। यदि तू उपभोग की योग्यता के बिना धन चाहेगा तो तुझे गुप्त धन दे दूंगा और यदि खर्च के लिये धन चाहेगा तो उपभुक्त धन दे दूंगा।"

यह कहकर वह देवता लुप्त हो गया। सोमिलक उसके आदेशानुसार फिर वर्धमानपुर पहुँचा। शाम हो गई थी। पूछता-पूछता वह गुप्तधन के घर पर चला गया। घर पर उसका किसी ने सत्कार नहीं किया। इसके विपरीत उसे भला-बुरा कहकर गुप्तधन और उसकी पत्नी ने घर से बाहिर धकेलना चाहा। किन्तु, सोमिलक भी अपने संकल्पों का पक्का था। सब के विरुद्ध होते हुए भी वह घर में घुसकर जा बैठा। भोजन के समय उसे गुप्तधन ने रूखी-सूखी रोटी दे दी। उसे खाकर वह वहीं सो गया। स्वप्न में उसने फिर वही दोनों देव देखे। वे बातें कर रहे थे। एक कह रहा था—"हे पौरुष! तूने गुप्तधन को भोग्य से इतना अधिक धन क्यों दे दिया कि उसने सोमिलक को भी रोटी देदी।" पौरुष ने उत्तर दिया—"मेरा इसमें दोष नहीं। मुझे पुरुष के हाथों धर्म-पालन करवाना ही है, उसका फल देना तेरे अधीन है।"

दूसरे दिन गुप्तधन पेचिश से बीमार हो गया और उसे उपवास करना पड़ा। इस तरह उसकी क्षतिपूर्त्ति हो गई।

सोमिलक अगले दिन सुबह उपभुक्त धन के घर गया। वहां उसने भोजनादि द्वारा उसका सत्कार किया। सोने के लिये सुन्दर शय्या भी दी। सोते-सोते उसने फिर सुना: वही दोनों देव बातें कर रहे थे। एक कह रहा था—"हे पौरुष ! इसने सोमिलक का सत्कार करते हुए बहुत धन व्यय कर दिया है। अब इसकी क्षतिपूर्त्ति कैसे होगी ?" दूसरे ने कहा—"हे भाग्य ! सत्कार के लिये धन व्यय करवाना मेरा धर्म था, इसका फल देना तेरे अधीन है।"

सुबह होने पर सोमिलक ने देखा कि राज-दरबार से एक राज-पुरुष राज-प्रसाद के रूप में धन की भेंट लाकर उपभुक्त धन को दे रहा था। यह देखकर सोमिलक ने विचार किया कि "यह संचय-रहित उपभुक्त धन ही गुप्तधन से श्रेष्ठ है। जिस धन का दान कर दिया जाय या सत्कार्यों में व्यय कर दिया जाय वह धन संचित धन की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है।"

❀ ❀ ❀

मन्थरक ने ये कहानियाँ सुनाकर हिरण्यक से कहा कि इस कारण तुझे भी धन-विषयक चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तेरा ज़मीन में गड़ा हुआ ख़ज़ाना चला गया तो जाने दे। भोग के बिना उसका तेरे लिये उपयोग भी क्या था ? उपार्जित धन का सबसे अच्छा संरक्षण यही है कि उसका दान कर दिया जाय। शहद की मक्खियाँ इतना मधु-सञ्चय करती हैं, किन्तु उपभोग नहीं

कर सकतीं। इस सञ्चय से क्या लाभ?

मन्थरक कछुआ, लघुपतनक कौवा और हिरण्यक चूहा वहां बैठे-बैठे यही बातें कर रहे थे कि वहां चित्रांग नाम का हिरण कहीं से दौड़ता-हांफता आ गया। एक व्याध उसका पीछा कर रहा था। उसे आता देखकर कौवा उड़कर वृक्ष की शाखा पर बैठ गया। हिरण्यक पास के बिल में घुस गया और मन्थरक तालाब के पानी में जा छिपा।

कौवे ने हिरण को अच्छी तरह देखने के बाद मन्थरक से कहा—"मित्र मन्थरक! यह तो हिरण के आने की आवाज़ है। एक प्यासा हिरण पानी पीने के लिये तालाब पर आया है। उसी का यह शब्द है, मनुष्य का नहीं।"

मन्थरक—"यह हिरण बार-बार पीछे मुड़कर देख रहा है और डरा हुआ सा है। इसलिये यह प्यासा नहीं, बल्कि व्याध के डर से भागा हुआ है। देख तो सही, इसके पीछे व्याध आ रहा है या नहीं?"

दोनों की बात सुनकर चित्रांग हिरण बोला—"मन्थरक! मेरे भय का कारण तुम जान गये हो। मैं व्याध के बाणों से डरकर बड़ी कठिनाई से यहाँ पहुँच पाया हूँ। तुम मेरी रक्षा करो। अब तुम्हारी शरण में हूँ। मुझे कोई ऐसी जगह बतलाओ जहाँ व्याध न पहुँच सके।"

मन्थरक ने हिरण को घने जङ्गलों में भाग जाने की सलाह दी। किन्तु लघुपतनक ने ऊपर से देखकर बतलाया कि व्याध

दूसरी दिशा में चले गये हैं, इसलिये अब डर की कोई बात नहीं है। इसके बाद चारों मित्र तालाब के किनारे वृक्षों की छाया में मिलकर देर तक बातें करते रहे।

कुछ समय बाद एक दिन जब कछुआ, कौवा और चूहा बातें कर रहे थे, शाम हो गई। बहुत देर बाद भी हिरण नहीं आया। तीनों को सन्देह होने लगा कि कहीं फिर वह व्याध के जाल में न फँस गया हो; अथवा शेर, बाघ आदि ने उस पर हमला न कर दिया हो। घर में बैठे स्वजन अपने प्रवासी प्रियजनों के सम्बन्ध में सदा शंकित रहते हैं।

बहुत देर तक भी चित्राँग हिरण नहीं आया तो मन्थरक कछुए ने लघुपतनक कौवे को जङ्गल में जाकर हिरण के खोजने की सलाह दी। लघुपतनक ने कुछ दूर जाकर ही देखा कि वहाँ चित्राँग एक जाल में बँधा हुआ है। लघुपतनक उसके पास गया। उसे देखकर चित्राँग की आँखों में आँसू आ गये। वह बोला—"अब मेरी मृत्यु निश्चित है। अन्तिम समय में तुम्हारे दर्शन कर के मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। प्राण विसर्जन के समय मित्र-दर्शन बड़ा सुखद होता है। मेरे अपराध क्षमा करना।"

लघुपतनक ने धीरज बँधाते हुए कहा—"घबराओ मत। मैं अभी हिरण्यक चूहे को बुला लाता हूँ। वह तुम्हारे जाल काट देगा।"

यह कहकर वह हिरण्यक के पास चला गया और शीघ्र ही उसे पीठ पर बिठाकर ले आया। हिरण्यक अभी जाल काटने की

विधि सोच ही रहा था कि लघुपतनक ने वृक्ष के ऊपर से दूर पर किसी को देखकर कहा—"यह तो बहुत बुरा हुआ।"

हिरण्यक ने पूछा—"क्या कोई व्याध आ रहा है ?"

लघुपतनक—"नहीं, व्याध तो नहीं, किन्तु मन्थरक कछुआ इधर चला आ रहा है।"

हिरण्यक—"तब तो खुशी की बात है। दुःखी क्यों होता है ?"

लघुपतनक—"दुःखी इसलिये होता हूँ कि व्याध के आने पर मैं ऊपर उड़ जाऊँगा, हिरण्यक बिल में घुस जायगा, चित्राँग भी छलागें मारकर घने जङ्गल में घुस जायगा; लेकिन यह मन्थरक कैसे अपनी जान बचायगा ? यही सोचकर चिन्तित हो रहा हूँ।"

मन्थरक के वहाँ आने पर हिरण्यक ने मन्थरक से कहा—"मित्र ! तुमने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया। अब भी वापिस लौट जाओ, कहीं व्याध न आ जाय।"

मन्थरक ने कहा—"मित्र ! मैं अपने मित्र को आपत्ति में जानकर वहाँ नहीं रह सका। सोचा, उसकी आपत्ति में हाथ बटाऊँगा, तभी चला आया।"

ये बातें हो ही रही थीं कि उन्होंने व्याध को उसी ओर आते देखा। उसे देखकर चूहे ने उसी क्षण चित्राँग के बन्धन काट दिये। चित्राँग भी उठकर घूम-घूमकर पीछे देखता हुआ आगे भाग खड़ा हुआ। लघुपतनक वृक्ष पर उड़ गया। हिरण्यक पास के बिल में घुस गया।

व्याध अपने जाल में किसी को न पाकर बड़ा दुःखी हुआ।

वहाँ से वापिस जाने को मुड़ा ही था कि उसकी दृष्टि धीरे-धीरे जाने वाले मन्थरक पर पड़ गई। उसने सोचा, "आज हिरण तो हाथ आया नहीं, कछुए को ही ले चलता हूँ। कछुए को ही आज भोजन बनाऊँगा। उससे ही पेट भरूँगा।" यह सोचकर वह कछुए को कन्धे पर डालकर चल दिया। उसे ले जाते देख हिरण्यक और लघुपतनक को बड़ा दुःख हुआ। दोनों मित्र मन्थरक को बड़े प्रेम और आदर से देखते थे। चित्राँग ने भी मन्थरक को व्याध के कन्धों पर देखा तो व्याकुल हो गया। तीनों मित्र मन्थरक की मुक्ति का उपाय सोचने लगे।

कौए ने तब एक उपाय ढूंढ निकाला। वह यह कि—"चित्रांग व्याध के मार्ग में, तालाब के किनारे जाकर लेट जाय। मैं तब उसे चोंच मारने लगूंगा। व्याध समझेगा कि हिरण मरा हुआ है। वह मन्थरक को ज़मीन पर रखकर इसे लेने के लिये जब आयगा तो हिरण्यक जल्दी-जल्दी मन्थरक के बन्धन काट दे। मन्थरक तालाब में घुस जाय, और चित्रांग छलांगें मारकर घने जंगल में चला जाय। मैं उड़कर वृक्ष पर चला ही जाऊँगा। सभी बच जायंगे, मन्थरक भी छूट जायगा।"

तीनों मित्रों ने यही उपाय किया। चित्रांग तालाब के किनारे मृतवत जा लेटा। कौवा उसकी गरदन पर सवार होकर चोंच चलाने लगा। व्याध ने देखा तो समझा कि हिरण जाल से छूट कर दौड़ता-दौड़ता यहाँ मर गया है। उसे लेने के लिये वह जाल-बद्ध कछुए को ज़मीन पर छोड़कर आगे बढ़ा तो हिरण्यक ने

अपने वज्र समान तीखे दांतों से जाल के बन्धन काट दिये। मन्थरक पानी में घुस गया। चित्रांग भी दौड़ गया।

व्याध ने चित्रांग को हाथ से निकलकर जाते देखा तो आश्चर्य में डूब गया। वापिस जाकर जब उसने देखा कि कछुआ भी जाल से निकलकर भाग गया है, तब उसके दुःख की सीमा न रही। वहीं एक शिला पर बैठकर वह विलाप करने लगा।

दूसरी ओर चारों मित्र लघुपतनक, मन्थरक, हिरण्यक और चित्रांग प्रसन्नता से फूले नहीं समाते थे। मित्रता के बल पर ही चारों ने व्याध से मुक्ति पाई थी।

मित्रता में बड़ी शक्ति है। मित्र-संग्रह करना जीवन की सफलता में बड़ा सहायक है। विवेकी व्यक्ति को सदा मित्र-प्राप्ति में यत्नशील रहना चाहिये।

॥ द्वितीय तन्त्र समाप्त ॥

तृतीय तन्त्र—

काकोलूकीयम्

इस तन्त्र में—
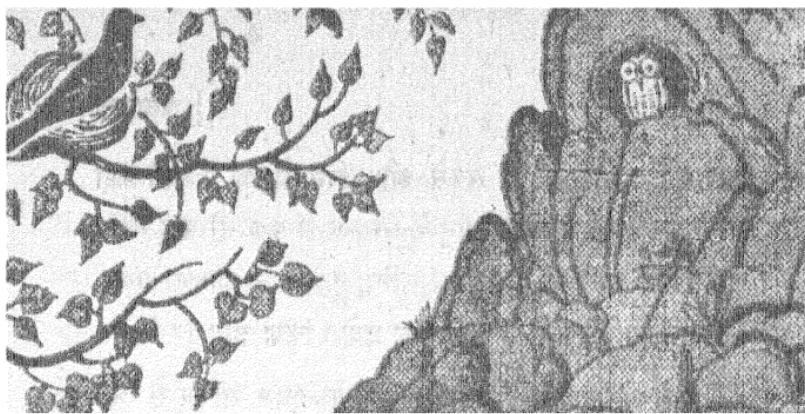
दक्षिण देश में महिलारोप्य नाम का एक नगर था। नगर के पास एक बड़ा पीपल का वृक्ष था। उसकी घने पत्तों से ढकी शाखाओं पर पक्षियों के घोंसले बने हुए थे। उन्हीं में से कुछ घोंसलों में कौवों के बहुत से परिवार रहते थे। कौवों का राजा वायसराज मेघवर्ण भी वहीं रहता था। वहाँ उसने अपने दल के लिये एक व्यूह सा बना लिया था।

उससे कुछ दूर पर्वत की गुफा में उल्लुओं का दल रहता था। इनका राजा अरिमर्दन था।

दोनों में स्वाभाविक वैर था। अरिमर्दन हर रात पीपल के वृक्ष के चारों ओर चक्कर लगाता था। वहाँ कोई इकला-दुकला कौवा मिल जाता तो उसे मार देता था। इसी तरह एक-एक करके उसने सैंकड़ों कौवे मार दिये।

तब, मेघवर्ण ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर उनसे उलूकराज के प्रहारों से बचने का उपाय पूछा। उसने कहा, "कठिनाई यह है

कि हम रात को देख नहीं सकते और दिन को उल्लू न जाने कहाँ जा छिपते हैं। हमें उनके स्थान के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं। समझ नहीं आता कि इस समय सन्धि, युद्ध, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव आदि उपायों में से किसका प्रयोग किया जाय ?"

पहले मेघवर्ण ने 'उज्जीवी' नाम के प्रथम सचिव से प्रश्न किया। उसने उत्तर दिया—"महाराज ! बलवान् शत्रु से युद्ध नहीं करना चाहिये। उससे तो सन्धि करना ही ठीक है। युद्ध से हानि ही हानि है। समान बल वाले शत्रु से भी पहले सन्धि करके, कछुए की तरह सिमटकर, शक्ति-संग्रह करने के बाद ही युद्ध करना उचित है।"

उसके बाद 'संजीवी' नाम के द्वितीय सचिव से प्रश्न किया गया। उसने कहा—"महाराज ! शत्रु के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिये। शत्रु सन्धि के बाद भी नाश ही करता है। पानी अग्नि द्वारा गरम होने के बाद भी अग्नि को बुझा ही देता है। विशेषतः क्रूर, अत्यन्त लोभी और धर्म रहित शत्रु से तो कभी भी सन्धि न करे। शत्रु के प्रति शान्ति-भाव दिखलाने से उसकी शत्रुता की आग और भी भड़क जाती है। वह और भी क्रूर हो जाता है। जिस शत्रु से हम आमने-सामने की लड़ाई न लड़ सकें उसे छल-बल द्वारा हराना चाहिये, किन्तु सन्धि नहीं करनी चाहिये। सच तो यह है कि जिस राजा की भूमि शत्रुओं के खून से और उनकी विधवा स्त्रियों के आँसुओं से नहीं सींची गई, वह राजा होने योग्य ही नहीं।"

तब मेघवर्ण ने तृतीय सचिव अनुजीवी से प्रश्न किया। उसने कहा—"महाराज! हमारा शत्रु दुष्ट है, बल में भी अधिक है। इसलिये उसके साथ सन्धि और युद्ध दोनों के करने में हानि है। उसके लिये तो शास्त्रों में यान नीति का ही विधान है। हमें यहाँ से किसी दूसरे देश में चला जाना चाहिये। इस तरह पीछे हटने में कायरता-दोष नहीं होता। शेर भी तो हमला करने से पहले पीछे हटता है। वीरता का अभिमान करके जो हठपूर्वक युद्ध करता है वह शत्रु की ही इच्छा पूरी करता है और अपने व अपने वंश का नाश कर लेता है।"

इसके बाद मेघवर्ण ने चतुर्थ सचिव 'प्रजीवी' से प्रश्न किया। उसने कहा—"महाराज! मेरी सम्मति में तो सन्धि, विग्रह और यान, तीनों में दोष है। हमारे लिये आसन नीति का आश्रय लेना ही ठीक है। अपने स्थान पर दृढ़ता से बैठना सब से अच्छा उपाय है। मगरमच्छ अपने स्थान पर बैठकर शेर को भी हरा देता है, हाथी को भी पानी में खींच लेता है। वही यदि अपना स्थान छोड़ दे तो चूहे से भी हार जाय। अपने दुर्ग में बैठकर हम बड़े से बड़े शत्रु का सामना कर सकते हैं। अपने दुर्ग में बैठकर हमारा एक सिपाही शत-शत शत्रुओं का नाश कर सकता है। हमें अपने दुर्ग को दृढ़ बनाना चाहिये। अपने स्थान पर दृढ़ता से खड़े छोटे-छोटे वृक्षों को आँधी-तूफ़ान के प्रबल झोंके भी उखाड़ नहीं सकते।"

तब मेघवर्ण ने चिरंजीवी नाम के पंचम सचिव से प्रश्न किया।

उसने कहा—"महाराज ! मुझे तो इस समय संश्रय नीति ही उचित प्रतीत होती है। किसी बलशाली सहायक मित्र को अपने पक्ष में करके ही हम शत्रु को हरा सकते हैं। अतः हमें यहीं ठहर कर किसी समर्थ मित्र की सहायता ढूंढ़नी चाहिये। यदि एक समर्थ मित्र न मिले तो अनेक छोटे २ मित्रों की सहायता भी हमारे पक्ष को सबल बना सकती है। छोटे २ तिनकों से गुथी हुई रस्सी भी इतनी मज़बूत बन जाती है कि हाथी को जकड़कर बाँध लेती है।

पांचों मन्त्रियों से सलाह लेने के बाद वायसराज मेघवर्ण अपने वंशागत सचिव स्थिरजीवी के पास गया। उसे प्रणाम करके वह बोला—"श्रीमान् ! मेरे सभी मन्त्री मुझे जुदा-जुदा राय दे रहे हैं। आप उनकी सलाहें सुनकर अपना निश्चय दीजिये।"

स्थिरजीवी ने उत्तर दिया—'वत्स ! सभी मन्त्रियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार ठीक ही मन्त्रणा दी है, अपने-अपने समय सभी नीतियाँ अच्छी होती हैं। किन्तु, मेरी सम्मति में तो तुम्हें द्वैधी-भाव, या भेदनीति का ही आश्रय लेना चाहिये। उचित यह है कि पहले हम सन्धि द्वारा शत्रु में अपने लिये विश्वास पैदा कर लें, किन्तु शत्रु पर विश्वास न करें। सन्धि करके युद्ध की तैयारी करते रहें; तैयारी पूरी होने पर युद्ध कर दें। सन्धिकाल में हमें शत्रु के निर्बल स्थलों का पता लगाते रहना चाहिये। उनसे परिचित होने के बाद वहीं आक्रमण कर देना उचित है।"

मेघवर्ण ने कहा—"आपका कहना निस्संदेह सत्य है, किन्तु शत्रु का निर्बल स्थल किस तरह देखा जाए ?"

स्थिरजीवी—"गुप्तचरों द्वारा ही हम शत्रु के निर्बल स्थल की खोज कर सकते हैं। गुप्तचर ही राजा की आँख का काम देता है।"

स्थिरजीवी की बात सुनने के बाद मेघवर्ण ने पूछा—"श्रीमान्! यह तो बतलाइये कि कौवों और उल्लुओं का यह स्वाभाविक वैर किस कारण से है?"

तब स्थिरजीवी ने अगली कथा सुनाई—

१.

उल्लू का अभिषेक

"एक एव हितार्थाय तेजस्वी पार्थिवो भुवः।"

. . . .

एक राजा के रहते दूसरे को राजा बनाना उचित नहीं।

. . . .

एक बार हंस, तोता, बगुला, कोयल, चातक, कबूतर, उल्लू आदि सब पक्षियों ने सभा करके यह सलाह की कि उनका राजा वैनतेय केवल वासुदेव की भक्ति में लगा रहता है; व्याधों से उनकी रक्षा का कोई उपाय नहीं करता; इसलिये पक्षियों का कोई अन्य राजा चुन लिया जाय। कई दिनों की बैठक के बाद सब ने एक सम्मति से सर्वाङ्ग सुन्दर उल्लू को राजा चुना।

अभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं, विविध तीर्थों से पवित्र जल मँगाया गया, सिंहासन पर रत्न जड़े गए, स्वर्णघट भरे गए, मङ्गल पाठ शुरू हो गया, ब्राह्मणों ने वेद पाठ शुरू कर दिया, नर्तकियों ने नृत्य की तैयारी कर लीं; उलूकराज राज्यसिंहासन पर बैठने ही वाले थे कि कहीं से एक कौवा आ गया।

कौवे ने सोचा, यह समारोह कैसा ? यह उत्सव किस लिए ? पक्षियों ने भी कौवे को देखा तो आश्चर्य में पड़ गए। उसे तो किसी ने बुलाया ही नहीं था। फिर भी, उन्होंने सुन रखा था कि कौआ सब से चतुर कूटराजनीतिज्ञ पक्षी है; इसलिये उस से मन्त्रणा करने के लिये सब पक्षी उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए।

उलूक राज के राज्याभिषेक की बात सुन कर कौवे ने हँसते हुए कहा—"यह चुनाव ठीक नहीं हुआ। मोर, हंस, कोयल, सारस, चक्रवाक, शुक आदि सुन्दर पक्षियों के रहते दिवान्ध उल्लू और टेढ़ी नाक वाले अप्रियदर्शी पक्षी को राजा बनाना उचित नहीं है। वह स्वभाव से ही रौद्र है और कटुभाषी है। फिर अभी तो वैनतेय राजा बैठा है। एक राजा के रहते दूसरे को राज्यासन देना विनाशक है। पृथ्वी पर एक ही सूर्य होता है; वही अपनी आभा से सारे संसार को प्रकाशित कर देता है। एक से अधिक सूर्य होने पर प्रलय हो जाती है। प्रलय में बहुत से सूर्य निकल आते हैं; उन से संसार में विपत्ति ही आती है, कल्याण नहीं होता।

राजा एक ही होता है। उसके नाम-कीर्त्तन से ही काम बन जाते हैं। चन्द्रमा के नाम से ही खरगोशों ने हाथियों से छुटकारा पाया था।

पक्षियों ने पूछा—"कैसे ?"

कौवे ने तब खरगोश और हाथी की यह कहानी सुनाई—

२.

बड़े नाम की महिमा

'व्यपदेशेन महतां सिद्धिः संजायते परा ।'

. . . .

बड़े नाम के प्रताप से ही संसार के काम सिद्ध हो जाते हैं ।

. . . .

एक वन में 'चतुर्दन्त' नाम का महाकाय हाथी रहता था । वह अपने हाथीदल का मुखिया था । बरसों तक सूखा पड़ने के कारण वहाँ के सब झील, तलैया, ताल सूख गये, और वृक्ष मुरझा गए । सब हाथियों ने मिलकर अपने गजराज चतुर्दन्त को कहा कि हमारे बच्चे भूख-प्यास से मर गए, जो शेष हैं मरने वाले हैं । इसलिये जल्दी ही किसी बड़े तालाब की खोज की जाय ।

बहुत देर सोचने के बाद चतुर्दन्त ने कहा—"मुझे एक तालाब याद आया है । वह पातालगङ्गा के जल से सदा भरा रहता है । चलो, वहीं चलें ।" पाँच रात की लम्बी यात्रा के बाद सब हाथी वहाँ पहुँचे । तालाब में पानी था । दिन भर पानी में खेलने के बाद हाथियों का दल शाम को बाहर निकला । तालाब के चारों ओर

खरगोशों के अनगिनत बिल थे। उन बिलों से ज़मीन पोली हो गई थी। हाथियों के पैरों से वे सब बिल टूट-फूट गए। बहुत से खरगोश भी हाथियों के पैरों से कुचले गये। किसी की गर्दन टूट गई, किसी का पैर टूट गया। बहुत से मर भी गये।

हाथियों के वापस चले जाने के बाद उन बिलों में रहने वाले क्षत-विक्षत, लहू-लुहान खरगोशों ने मिल कर एक बैठक की। उस में स्वर्गवासी खरगोशों की स्मृति में दुःख प्रगट किया गया तथा भविष्य के संकट का उपाय सोचा गया। उन्होंने सोचा—आस-पास अन्यत्र कहीं जल न होने के कारण ये हाथी अब हर रोज़ इसी तालाब में आया करेंगे और उनके बिलों को अपने पैरों से रौंदा करेंगे। इस प्रकार दो चार दिनों में ही सब खरगोशों का वंशनाश हो जायगा। हाथी का स्पर्श ही इतना भयङ्कर है जितना साँप का सूँघना, राजा का हँसना और मानिनी का मान।

इस संकट से बचने का उपाय सोचते-सोचते एक ने सुझाव रखा—"हमें अब इस स्थान को छोड़ कर अन्य देश में चले जाना चाहिए। यह परित्याग ही सर्वश्रेष्ठ नीति है। एक का परित्याग परिवार के लिये, परिवार का गाँव के लिये, गाँव का शहर के लिये और सम्पूर्ण पृथ्वी का परित्याग अपनी रक्षा के लिए करना पडे तो भी कर देना चाहिये।"

किन्तु, दूसरे खरगोशों ने कहा—"हम तो अपने पिता-पितामह की भूमि को न छोड़ेंगे।"

कुछ ने उपाय सुझाया कि खरगोशों की ओर से एक चतुर

दूत हाथियों के दलपति के पास भेजा जाय। वह उससे यह कहे कि चन्द्रमा में जो खरगोश बैठा है उसने हाथियों को इस तालाब में आने से मना किया है। संभव है चन्द्रमास्थित खरगोश की बात को वह मान जाय।"

बहुत विचार के बाद लम्बकर्ण नाम के खरगोश को दूत बना कर हाथियों के पास भेजा गया। लम्बकर्ण भी तालाब के रास्ते में एक ऊँचे टीले पर बैठ गया; और जब हाथियों का झुण्ड वहाँ आया तो वह बोला—"यह तालाब चाँद का अपना तालाब है। यहां मत आया करो।"

गजराज—"तू कौन है?"

लम्बकर्ण—"मैं चाँद में रहने वाला खरगोश हूँ। भगवान् चन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास यह कहने के लिये भेजा है कि इस तालाब में तुम मत आया करो।"

गजराज ने कहा—"जिस भगवान् चन्द्र का तुम सन्देश लाए हो वह इस समय कहाँ है?"

लम्बकर्ण—"इस समय वह तालाब में हैं। कल तुम ने खरगोशों के बिलों का नाश कर दिया था। आज वे खरगोशों की विनति सुनकर यहाँ आये हैं। उन्हीं ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।"

गजराज—"ऐसा ही है तो मुझे उनके दर्शन करा दो। मैं उन्हें प्रणाम करके वापस चला जाऊँगा।"

लम्बकर्ण अकेले गजराज को लेकर तालाब के किनारे पर ले

गया। तालाब में चाँद की छाया पड़ रही थी। गजराज ने उसे ही चाँद समझ कर प्रणाम किया और लौट पड़ा। उस दिन के बाद कभी हाथियों का दल तालाब के किनारे नहीं आया।

× × ×

कहानी समाप्त होने के बाद कौवे ने फिर कहा—"यदि तुम उल्लू जैसे नीच, आलसी, कायर, व्यसनी और पीठ पीछे कटु-भाषी पक्षी को राजा बनाओगे तो शश कपिंजल की तरह नष्ट हो जाओगे।

पक्षियों ने पूछा—"कैसे ?"

कौवे ने कहा—"सुनो—

३.

बिल्ली का न्याय

"क्षुद्रमर्थपतिं प्राप्य न्यायान्वेषणतत्परौ।
उभावपि क्षयं प्राप्तौ पुरा शशकपिंजलौ ॥"

. . . .

नीच और लोभी को पंच बनाने वाले दोनों
पक्ष नष्ट हो जाते हैं।

. . . .

एक जंगल के जिस वृक्ष की शाखा पर मैं रहता था, उसके नीचे के तने में एक खोल के अन्दर कपिंजल नाम का तीतर भी रहता था। शाम को हम दोनों में खूब बातें होती थीं। हम एक-दूसरे को दिन भर के अनुभव सुनाते थे और पुराणों की कथायें कहते थे।

एक दिन वह तीतर अपने साथियों के साथ बहुत दूर के खेत में धान की नई-नई कोंपलें खाने चला गया। बहुत रात बीते भी जब वह नहीं आया तो मैं बहुत चिन्तित होने लगा। मैंने सोचा—किसी बधिक ने जाल में न बाँध लिया हो, या किसी जंगली बिल्ली ने न खा लिया हो। बहुत रात बीतने के बाद उस वृक्ष के खाली पड़े खोल में 'शीघ्रगो' नाम का खरगोश घुस आया। मैं भी तीतर

के वियोग में इतना दुःखी था कि उसे रोका नहीं।

दूसरे दिन कपिंजल अचानक ही आ गया। धान की नई-नई कोंपलें खाने के बाद वह खूब मोटा-ताज़ा हो गया था। अपनी खोल में आने पर उसने देखा कि वहाँ एक खरगोश बैठा है। उसने खरगोश को अपनी जगह खाली करने को कहा। खरगोश भी तीखे स्वभाव का था; बोला—"यह घर अब तेरा नहीं है। वापी, कूप, तालाब और वृक्ष के घरों का यही नियम है कि जो भी उनमें बसेरा करले उसका ही वह घर हो जाता है। घर का स्वामित्व केवल मनुष्यों के लिये होता है, पक्षियों के लिये गृह-स्वामित्व का कोई विधान नहीं है।"

झगड़ा बढ़ता गया। अन्त में, कपिंजल ने किसी भी तीसरे पंच से इसका निर्णय करने की बात कही। उनकी लड़ाई और समझौते की बातचीत को एक जंगली बिल्ली सुन रही थी। उसने सोचा, मैं ही पंच बन जाऊँ तो कितना अच्छा है; दोनों को मार कर खाने का अवसर मिल जायगा।

यह सोच हाथ में माला लेकर सूर्य की ओर मुख कर के नदी के किनारे कुशासन बिछाकर वह आँखें मूंद बैठ गयी और धर्म का उपदेश करने लगी। उसके धर्मोपदेश को सुनकर खरगोश ने कहा—"यह देखो! कोई तपस्वी बैठा है, इसी को पंच बनाकर पूछ लें।" तीतर बिल्ली को देखकर डर गया; दूर से बोला—"मुनिवर! तुम हमारे झगड़े का निपटारा कर दो। जिसका पक्ष धर्म-विरुद्ध होगा उसे तुम खा लेना।" यह सुन बिल्ली ने आँख खोली और कहा—

"राम-राम ! ऐसा न कहो। मैंने हिंसा का नारकीय मार्ग छोड़ दिया है। अतः मैं धर्म-विरोधी पक्ष की भी हिंसा नहीं करूँगी। हाँ, तुम्हारा निर्णय करना मुझे स्वीकार है। किन्तु, मैं वृद्ध हूँ; दूर से तुम्हारी बात नहीं सुन सकती, पास आकर अपनी बात कहो।" बिल्ली की बात पर दोनों को विश्वास हो गया; दोनों ने उसे पंच मान लिया, और उसके पास आगये। उसने भी झपट्टा मारकर दोनों को एक साथ ही पंजों में दबोच लिया।

इसी कारण, मैं कहता हूँ कि नीच और व्यसनी को राजा बनाओगे तो तुम सब नष्ट हो जाओगे। इस दिवान्ध उल्लू को राजा बनाओगे तो वह भी रात के अंधेरे में तुम्हारा नाश कर देगा।"

× × ×

कौवे की बात सुनकर सब पक्षी उल्लू को राज-मुकुट पहनाये बिना चले गये। केवल अभिषेक की प्रतीक्षा करता हुआ उल्लू उसकी मित्र कृकालिका और कौवा रह गये। उल्लू ने पूछा—"मेरा अभिषेक क्यों नहीं हुआ ?"

कृकालिका ने कहा—"मित्र ! एक कौवे ने आकर रंग में भंग कर दिया। शेष सब पक्षी उड़कर चले गये हैं, केवल वह कौवा ही यहाँ बैठा है।"

तब, उल्लू ने कौवे से कहा—"दुष्ट कौवे ! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था जो तूने मेरे कार्य में विघ्न डाल दिया। आज से मेरा-तेरा वंशपरंपरागत वैर रहेगा।"

यह कहकर उल्लू वहाँ से चला गया। कौवा बहुत चिन्तित हुआ वहीं बैठा रहा। उसने सोचा—"मैंने अकारण ही उल्लू से वैर मोल ले लिया। दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप करना और कटु सत्य कहना भी दुःखप्रद होता है।"

यही सोचता-सोचता वह कौवा वहाँ से आ गया। तभी से कौओं और उल्लुओं में स्वाभाविक वैर चला आता है।

× × ×

कहानी सुनने के बाद मेघवर्ण ने पूछा—"अब हमें क्या करना चाहिये ?"

स्थिरजीवी ने धीरज बँधाते हुए कहा—"हमें छल द्वारा शत्रु पर विजय पानी चाहिये। छल से अत्यन्त बुद्धिमान् ब्राह्मण को भी मूर्ख बनाकर धूर्त्तों ने जीत लिया था।"

मेघवर्ण ने पूछा—"कैसे ?"

स्थिरजीवी ने तब धूर्त्तों और ब्राह्मण की यह कथा सुनाई—

४.

धूर्तों के हथकंडे

"बहुबुद्धिसमायुक्ताः सुविज्ञाना बलोत्कटान् ।
शक्ता वंचयितुं धूर्ता ब्राह्मणं छागलादिव ॥"

. . . .

धूर्तता और छल से बड़े-बड़े बुद्धिमान् और प्रकाण्ड पंडित भी ठगे जाते हैं ।

. . . .

एक स्थान पर मित्रशर्मा नाम का धार्मिक ब्राह्मण रहता था। एक दिन माघ महीने में, जब आकाश पर थोड़े-थोड़े बादल मंडरा रहे थे, वह अपने गाँव से चला और दूर के गाँव में जाकर अपने यजमान से बोला—"यजमान जी ! मैं अगली अमावस के दिन यज्ञ कर रहा हूँ। उसके लिये एक पशु दे दो।"

यजमान ने एक हृष्ट-पुष्ट पशु उसे दान दे दिया। ब्राह्मण ने भी पशु को अपने कन्धों पर उठाकर जल्दी-जल्दी अपने घर की राह ली। ब्राह्मण के पास मोटा-ताज़ा पशु देखकर तीन ठगों के मुख में लोभवश पानी आ गया। वे कई दिनों से भूखे थे। उन्होंने उस पशु को हस्तगत करने की एक योजना बनाई। उसके अनुसार उनमें से एक वेष बदलकर ब्राह्मण के सामने आ गया और बोला—

"ब्राह्मण ! तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया है ? इस अस्पृश्य अपवित्र कुत्ते को कन्धों पर उठाकर क्यों लेजा रहे हो ? लोग तुम पर हँसेंगे।"

ब्राह्मण ने क्रोध में आकर उसका उत्तर दिया—"मूर्ख ! कहीं तू अन्धा तो नहीं है, जो इस पशु को कुत्ता कहता है।"

कुछ रास्ता पार करने के बाद दूसरा धूर्त्त भी वेष बदलकर ब्राह्मण के सामने आकर कहने लगा—

"ब्राह्मण ! यह क्या अनर्थ कर रहे हो ? इस मरे पशु को कन्धों पर उठाकर क्यों ले जा रहे हो ?"

उसे भी ब्राह्मण ने क्रोध से फटकारते हुए कहा—"अन्धा तो नहीं हो गया तू, जो इसे मृत पशु बतला रहा है !"

ब्राह्मण थोड़ी दूर ही और गया होगा कि तीसरा धूर्त्त भी वेष बदलकर सामने से आ गया। ब्राह्मण को देखकर वह भी कहने लगा—"छिः-छिः ब्राह्मण ! यह क्या कर रहे हो ? गधे को कन्धों पर उठाकर ले जाते हो। गधे को तो छूकर भी स्नान करना पड़ता है। इसे छोड़ दो। कहीं कोई देख लेगा तो गाँव भर में तुम्हारा अपयश हो जायगा।"

यह सुनकर ब्राह्मण ने उस पशु को भी गधा मानकर रास्ते में छोड़ दिया। वह पशु छूटकर घर की ओर भागा, लेकिन ठगों ने मिलकर उसे पकड़ लिया और खा डाला।

×   ×   ×

इसीलिये मैं कहता हूँ कि बुद्धिमान् व्यक्ति भी छल-बल से पराजित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से दुर्बलों के साथ भी विरोध करना अच्छा नहीं होता। सांप ने चींटियों से विरोध किया था; बहुत होने से चींटियों ने सांप को मार डाला।

मेघवर्ण ने पूछा—"यह कैसे ?"

स्थिरजीवी ने तब सांप-चींटियों की यह कथा सुनाई—

५.

बहुतों से वैर न करो

'बहवो न विरोद्धव्या दुर्जया हि महाजनाः'

. . . .

बहुतों के साथ विरोध न करे

. . . .

एक वल्मीक में बहुत बड़ा काला नाग रहता था। अभिमानी होने के कारण उसका नाम था 'अतिदर्प'। एक दिन वह अपने बिल को छोड़कर एक और संकीर्ण बिल से बाहर जाने का यत्न करने लगा। इससे उसका शरीर कई स्थानों से छिल गया। जगह-जगह घाव हो गए, खून निकलने लगा। खून की गन्ध पाकर चींटियां आ गईं और उसे घेरकर तंग करने लगीं। सांप ने कई चींटियों को मारा, किन्तु कहाँ तक मारता? अन्त में चींटियों ने ही उसे काट-काट कर मार दिया।

× × ×

स्थिरजीवि ने कहा—"इसीलिए मैं कहता हूँ कि बहुतों के साथ विरोध न करो।"

मेघवर्ण—"आप जैसा आदेश करेंगे, वैसा ही मैं करूँगा।"

स्थिरजीवी—"अच्छी बात है। मैं स्वयं गुप्तचर का काम करूंगा। तुम मुझ से लड़कर, मुझे लहू-लुहान करने के बाद इसी वृक्ष के नीचे फेंककर स्वयं सपरिवार ऋष्यमूक पर्वत पर चले जाओ। मैं तुम्हारे शत्रु उल्लुओं का विश्वासपात्र बनकर उन्हें इस वृक्ष पर बने अपने दुर्ग में बसा लूंगा और अवसर पाकर उन सब का नाश कर दूंगा। तब तुम फिर यहाँ आ जाना।"

मेघवर्ण ने ऐसा ही किया। थोड़ी देर में दोनों की लड़ाई शुरू हो गई। दूसरे कौवे जब उसको सहायता को आए तो उसने उन्हें दूर करके कहा—"इसका दण्ड मैं स्वयं दे लूंगा।" अपनी चोंचों के प्रहार से घायल करके वह स्थिरजीवी को वहीं फैंकने के बाद अपने आप परिवारसहित ऋष्यमूक पर्वत पर चला गया।

तब उल्लू की मित्र कृकालिका ने मेघवर्ण के भागने और अमात्य स्थिरजीवी से लड़ाई होने की बात उलूकराज से कह दी। उलूकराज ने भी रात आने पर दलबल समेत पीपल के वृक्ष पर आक्रमण कर दिया। उसने सोचा—भागते हुए शत्रु को नष्ट करना अधिक सहज होता है। पीपल के वृक्ष को घेरकर उसने शेष रह गए सभी कौवों को मार दिया।

अभी उलूकराज की सेना भागे हुए कौवों का पीछा करने की सोच रही थी कि आहत स्थिरजीवी ने कराहना शुरू कर दिया। उसे सुनकर सब का ध्यान उसकी ओर गया। सब उल्लू उसे मारने को झपटे। तब स्थिरजीवी ने कहा—

"इससे पूर्व कि तुम मुझे जान से मार डालो, मेरी एक बात सुन लो। मैं मेघवर्ण का मन्त्री हूँ। मेघवर्ण ने ही मुझे घायल करके इस तरह फैंक दिया था। मैं तुम्हारे राजा से बहुत सी बातें कहना चाहता हूँ। उससे मेरी भेंट करवा दो।" सब उल्लुओं ने उलूकराज से यह बात कही। उलूकराज स्वयं वहाँ आया। स्थिर-जीवी को देखकर वह आश्चर्य से बोला—"तेरी यह दशा किसने कर दी ?"

स्थिरजीवी—"देव ! बात यह हुई कि दुष्ट मेघवर्ण आपके ऊपर सेना सहित आक्रमण करना चाहता था। मैंने उसे रोकते हुए कहा कि वे बहुत बलशाली हैं, उनसे युद्ध मत करो, उनसे सुलह कर लो। बलशाली शत्रु से सन्धि करना ही उचित है; उसे सब कुछ देकर भी वह अपने प्राणों की रक्षा तो कर ही लेता है। मेरी बात सुनकर उस दुष्ट मेघवर्ण ने समझा कि मैं आपका हितचिन्तक हूँ। इसीलिए वह मुझ पर झपट पड़ा। अब आप ही मेरे स्वामी हैं। मैं आपकी शरण आया हूँ। जब मेरे घाव भर जायंगे तो मैं स्वयं आपके साथ जाकर मेघवर्ण को खोज निकालूंगा और उसके सर्वनाश में आपका सहायक बनूंगा।"

स्थिरजीवी की बात सुनकर उलूकराज ने अपने सभी पुराने मंत्रियों से सलाह ली। उसके पास भी पांच मन्त्री थे : रक्ताक्ष, क्रूराक्ष, दीप्ताक्ष, वक्रनास, प्राकारकर्ण।

पहले उसने रक्ताक्ष से पूछा—"इस शरणागत शत्रु मन्त्री के साथ कौनसा व्यवहार किया जाय ?" रक्ताक्ष ने कहा कि इसे

अविलम्ब मार दिया जाय। शत्रु को निर्बल अवस्था में ही मार देना चाहिए, अन्यथा बली होने के बाद वही दुर्जय हो जाता है। इसके अतिरिक्त एक और बात है; एक बार टूट कर जुड़ी हुई प्रीति स्नेह के अतिशय प्रदर्शन से भी बढ़ नहीं सकती।"

उलूकराज ने पूछा—"वह कैसे ?"

रक्ताक्ष ने तब ब्राह्मण और साँप की यह कथा सुनाई —

६.

टूटी प्रीति जुड़े न दूजी बार

'भिन्नश्लिष्टा तु या प्रीतिर्न सा स्नेहेन वर्धते'

. . . . .

एक बार टूट कर जुड़ी हुई प्रीति कभी स्थिर नहीं रह सकती

. . . . .

एक स्थान पर हरिदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था। पर्याप्त भिक्षा न मिलने से उसने खेती करना शुरू कर दिया था। किन्तु खेती कभी ठीक नहीं हुई। किसी न किसी कारण फ़सल ख़राब हो जाती थी।

गर्मियों के दिनों में एक दिन वह अपने खेत में वृक्ष की छाया के नीचे लेटा हुआ था कि उसने पास ही एक बिल पर फन फैलाकर बैठे हुए भयंकर सांप को देखा। सांप को देखकर सोचने लगा, अवश्यमेव यही मेरा क्षेत्र-देवता है; मैंने इसकी कभी पूजा नहीं की, तभी मेरी खेती सूख जाती है, अब इसकी पूजा किया करूंगा। यह सोचकर वह कहीं से दूध मांग कर पात्र में डाल लाया और बिल के पास जाकर बोला—'क्षेत्रपाल! मैंने अज्ञानवश आजतक तेरी पूजा नहीं की। आज मुझे ज्ञान हुआ है। पूजा की यह भेंट स्वीकार करो और मेरे पिछले अपराधों को क्षमा कर दें।' यह कह कर वह दूध का पात्र वहीं रखकर वापिस आ गया।

अगले दिन सुबह जब वह बिल के पास गया तो देखता क्या है कि सांप ने दूध पी लिया है और पात्र में एक सोने की मुहर पड़ी है। दूसरे दिन भी ब्राह्मण ने जिस पात्र में दूध रखा था उस में सोने की मुहर पड़ी मिली। इसके बाद प्रतिदिन उसे दूध के बदले सोने की मुहर मिलने लगी। वह भी नियम से प्रतिदिन दूध देने लगा।

एक दिन हरिदत्त को गाँव से बाहर जाना था। इसलिए उसने अपने पुत्र को पूजा का दूध ले जाने के लिए आदेश दिया। पुत्र ने भी पात्र में दूध रख दिया। दूसरे दिन उसे भी मुहर मिल गई। तब, वह सोचने लगा : 'इस वल्मीक में सोने की मुहरों का ख़ज़ाना छिपा हुआ है, क्यों न इसे तोड़कर पूरा ख़ज़ाना एक बार ही हस्तगत कर लिया जाय।' यह सोचकर उसने अगले दिन जब दूध का पात्र रखा और सांप दूध पीने आया तो लाठी से सांप पर प्रहार किया। लाठी का निशाना चूक गया। सांप ने क्रोध में आकर हरिदत्त के पुत्र को काट लिया, जिससे वह वहीं मर गया।

दूसरे दिन जब हरिदत्त वापिस आया तो स्वजनों से पुत्र-मृत्यु का सब वृत्तान्त सुनकर बोला—"पुत्र ने अपने किये का फल पाया है। जो व्यक्ति अपनी शरण आये जीवों पर दया नहीं करता, उसके बने-बनाए काम भी बिगड़ जाते हैं, जैसे पद्मसर में हंसों का काम बिगड़ गया।"

स्वजनों ने पूछा—"कैसे ?"

हरिदत्त ने तब हंसों की अगली कथा सुनाई—

७.

शरणागत को दुत्कारो नहीं

भूतान् यो नाऽनुगृह्णाति ह्यात्मनः शरणागतान् ।
भूतार्थास्तस्य नश्यन्ति हंसाः पद्मवने यथा ॥

• • • •

जो शरणागत जीव पर दया नहीं करते उन पर
दैव की भी दया नहीं रहती ।

• • • •

एक नगर में चित्ररथ नाम का राजा रहता था । उसके पास एक पद्मसर नाम का तालाब था । राजा के सिपाही उसकी रखवाली करते थे । तालाब में बहुत से स्वर्णमय हंस रहते थे । प्रति छः महीने बाद वे हंस अपना एक पंख उतार देते थे । इससे राजा को छः महीने बाद अनेक सोने के पंख मिल जाते थे ।

कुछ दिन बाद वहाँ एक बहुत बड़ा स्वर्णपक्षी आ गया । हंसों ने उस पक्षी से कहा कि तुम इस तालाब में मत रहो । हम इस तालाब में प्रति छः मास बाद सोने का पंख देकर रहते हैं । मूल्य देकर हम ने यह तालाब किराये पर ले रखा है ।" पक्षी ने हंसों की बात पर कान नहीं दिये । दोनों में संघर्ष चलता रहा ।

एक दिन वह पक्षी राजा के पास जाकर बोला—"महाराज !

ये हंस कहते हैं कि यह तालाब उनका है, राजा का नहीं; राजा उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। मैंने उन से कहा था कि तुम राजा के प्रति अपमानभरे शब्द मत कहो, किन्तु वे न माने।"

राजा कानों का कच्चा था। उसने पत्ती के कथन को सत्य मानकर तालाब के स्वर्णमय हंसों को मारने के लिए अपने सिपाहियों को भेज दिया। हंसों ने जब सिपाहियों को लाठियाँ लेकर तालाब की ओर आते देखा तो वे समझ गए कि अब इस स्थान पर रहना उचित नहीं। अपने वृद्ध नेता की सलाह से वे उसी समय वहाँ से उड़ गये।

❀ ❀ ❀

स्वजनों को यह कहानी कहने के बाद हरिदत्त शर्मा ने फिर क्षेत्रपाल सांप की पूजा का विचार किया। दूसरे दिन वह पहले की तरह दूध लेकर वल्मीक पर पहुँचा, और साँप की स्तुति प्रारम्भ की। सांप बहुत देर बाद वल्मीक से थोड़ा बाहर निकल कर ब्राह्मण से बोला—

"ब्राह्मण! अब तू पूजा भाव से नहीं, बल्कि लोभ से यहाँ आया है। अब तेरा मेरा प्रेम नहीं हो सकता। तेरे पुत्र ने जवानी के जोश में मुझ पर लाठी का प्रहार किया। मैंने उसे डस लिया। अब न तो तू ही पुत्र-वियोग के दुःख को भूल सकता है और न ही मैं लाठी-प्रहार के कष्ट को भुला सकता हूँ।"

यह कहकर वह एक बहुत बड़ा हीरा देकर अपने बिल में

घुस गया, और जाते हुए कह गया कि "आगे कभी इधर आने का कष्ट न करना।"

❀ ❀ ❀

यह कहानी कहने के बाद रक्ताक्ष ने कहा, "इसीलिए मैं कहता था कि एक बार टूटकर जुड़ी हुई प्रीति कभी स्थिर नहीं रहती।"

रक्ताक्ष से सलाह लेने के बाद उलूकराज ने दूसरे मन्त्री क्रूराक्ष से सलाह ली कि स्थिरजीवी का क्या किया जाय ?

क्रूराक्ष ने कहा—"महाराज ! मेरी राय में तो शरणागत की हत्या पाप है। शरणागत का सत्कार हमें उसी तरह करना चाहिए जिस तरह कबूतर ने अपना माँस देकर किया था।

राजा ने पूछा—"किस तरह ?"

तब क्रूराक्ष ने कपोत-व्याध की यह कहानी सुनाई—

८.

शरणागत के लिये आत्मोत्सर्ग

'प्राणैरपि त्वया नित्यं संरक्ष्यः शरणागतः'

. . . .

शरणागत शत्रु का अतिथि के समान सत्कार करो, प्राण देकर भी उसकी तृप्ति करो।

. . . .

एक जगह एक लोभी और निर्दय व्याध रहता था। पक्षियों को मारकर खाना ही उसका काम था। इस भयङ्कर काम के कारण उसके प्रियजनों ने भी उसका त्याग कर दिया था। तब से वह अकेला ही, हाथ में जाल और लाठी लेकर जङ्गलों में पक्षियों के शिकार के लिये घूमा करता था।

एक दिन उसके जाल में एक कबूतरी फँस गई। उसे लेकर जब वह अपनी कुटिया की ओर चला तो आकाश बादलों से घिर गया। मूसलाधार वर्षा होने लगी। सर्दी से ठिठुर कर व्याध आश्रय की खोज करने लगा। थोड़ी दूरी पर एक पीपल का वृक्ष था। उसके खोल में घुसते हुए उसने कहा—"यहाँ जो भी रहता है, मैं उसकी शरण जाता हूँ। इस समय जो मेरी सहायता करेगा उसका जन्मभर ऋणी रहूँगा।"

उस खोल में वही कबूतर रहता था जिसकी पत्नी को व्याध ने जाल में फँसाया था। कबूतर उस समय पत्नी के वियोग से दुःखी होकर विलाप कर रहा था। पति को प्रेमातुर पाकर कबूतरी का मन आनन्द से नाच उठा। उसने मन ही मन सोचा—'मेरे धन्य भाग्य हैं जो ऐसा प्रेमी पति मिला है। पति का प्रेम ही पत्नी का जीवन है। पति की प्रसन्नता से ही स्त्री-जीवन सफल होता है। मेरा जीवन सफल हुआ।' यह विचार कर वह पति से बोली—

"पतिदेव! मैं तुम्हारे सामने हूँ। इस व्याध ने मुझे बाँध लिया है। यह मेरे पुराने कर्मों का फल है। हम अपने कर्मफल से ही दुःख भोगते हैं। मेरे बन्धन की चिन्ता छोड़कर तुम इस समय अपने शरणागत अतिथि की सेवा करो। जो जीव अपने अतिथि का सत्कार नहीं करता उसके सब पुण्य छूटकर अतिथि के साथ चले जाते हैं और सब पाप वहीं रह जाते हैं।"

पत्नी की बात सुन कर कबूतर ने व्याध से कहा—"चिन्ता न करो वधिक! इस घर को भी अपना ही जानो। कहो, मैं तुम्हारी कौन सी सेवा कर सकता हूँ?"

व्याध—"मुझे सर्दी सता रही है, इसका उपाय कर दो।"

कबूतर ने लकड़ियाँ इकट्ठी करके जला दीं। और कहा—"तुम आग सेक कर सर्दी दूर कर लो।"

कबूतर को अब अतिथि-सेवा के लिये भोजन की चिन्ता हुई। किन्तु, उसके घोंसले में तो अन्न का एक दाना भी नहीं था। बहुत सोचने के बाद उसने अपने शरीर से ही व्याध की भूख मिटाने

का विचार किया। यह सोच कर वह महात्मा कबूतर स्वयं जलती आग में कूद पड़ा। अपने शरीर का बलिदान करके भी उसने व्याध के तर्पण करने का प्रण पूरा किया।

व्याध ने जब कबूतर का यह अद्भुत बलिदान देखा तो आश्चर्य में डूब गया। उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसी क्षण उसने कबूतरी को जाल से निकाल कर मुक्त कर दिया और पक्षियों को फँसाने के जाल व अन्य उपकरणों को तोड़-फोड़ कर फैंक दिया।

कबूतरी अपने पति को आग में जलता देखकर विलाप करने लगी। उसने सोचा—"अपने पति के बिना अब मेरे जीवन का प्रयोजन ही क्या है? मेरा संसार उजड़ गया, अब किसके लिये प्राण धारण करूँ?" यह सोच कर वह पतिव्रता भी आग में कूद पड़ी। इन दोनों के बलिदान पर आकाश से पुष्पवर्षा हुई। व्याध ने भी उस दिन से प्राणी-हिंसा छोड़ दी।

× × ×

क्रूराक्ष के बाद अरिमर्दन ने दीप्ताक्ष से प्रश्न किया।

दीप्ताक्ष ने भी यही सम्मति दी।

इसके बाद अरिमर्दन ने वक्रनास से प्रश्न किया। वक्रनास ने भी कहा—"देव! हमें इस शरणागत शत्रु की हत्या नहीं करनी चाहिये। कई बार शत्रु भी हित का कार्य कर देते हैं। आपस में ही जब उनका विवाद हो जाए तो एक शत्रु दूसरे शत्रु को स्वयं नष्ट

कर देता है। इसी तरह एक बार चोर ने ब्राह्मण के प्राण बचाये थे, और राक्षस ने चोर के हाथों ब्राह्मण के बैलों की चोरी को बचाया था।"

अरिमर्दन ने पूछा—"किस तरह ?"

वक्रनास ने तब चोर और राक्षस की यह कहानी सुनाई—

६.

शत्रु का शत्रु मित्र

शत्रवोऽपि हितायैव विवदन्तः परस्परम्

• • • •

परस्पर लड़ने वाले शत्रु भी हितकर होते हैं

• • • •

एक गाँव में द्रोण नाम का ब्राह्मण रहता था। भिक्षा माँग कर उसकी जीविका चलती थी। सर्दी-गर्मी रोकने के लिये उसके पास पर्याप्त वस्त्र भी नहीं थे। एक बार किसी यजमान ने ब्राह्मण पर दया करके उसे बैलों की जोड़ी दे दी। ब्राह्मण ने उनका भरन-पोषण बड़े यत्न से किया। आस-पास से घी-तेल-अनाज माँगकर भी उन बैलों को भरपेट खिलाता रहा। इससे दोनों बैल खूब मोटे-ताज़े हो गये। उन्हें देखकर एक चोर के मन में लालच आ गया। उसने चोरी करके दोनों बैलों को भगा लेजाने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय के साथ जब वह अपने गाँव से चला तो रास्ते में उसे लंबे-लंबे दांतों, लाल आँखों, सूखे बालों और उभरी हुई नाक वाला एक भयङ्कर आदमी मिला।

उसे देखकर चोर ने डरते-डरते पूछा—"तुम कौन हो ?"

उस भयङ्कर आकृति वाले आदमी ने कहा—"मैं ब्रह्मराक्षस हूँ; तुम कौन हो, कहाँ जा रहे हो ?"

चोर ने कहा—"मैं क्रूरकर्मा चोर हूँ, पास वाले ब्राह्मण के घर से बैलों की जोड़ी चुराने जा रहा हूँ।"

राक्षस ने कहा—"मित्र ! पिछले छः दिन से मैंने कुछ भी नहीं खाया। चलो, आज उस ब्राह्मण को मारकर ही भूख मिटाऊँगा। हम दोनों एक ही मार्ग के यात्री हैं। चलो, साथ-साथ चलें।"

शाम को दोनों छिपकर ब्राह्मण के घर में घुस गये। ब्राह्मण के शैयाशायी होने के बाद राक्षस जब उसे खाने के लिये आगे बढ़ने लगा तो चोर ने कहा—"मित्र ! यह बात न्यायानुकूल नहीं है। पहले मैं बैलों की जोड़ी चुरा लूँ, तब तू अपना काम करना।"

राक्षस ने कहा—"कभी बैलों को चुराते हुए खटका हो गया और ब्राह्मण जाग पड़ा तो अनर्थ हो जायगा, मैं भूखा ही रह जाऊँगा। इसलिये पहले मुझे ब्राह्मण को खा लेने दे, बाद में तुम चोरी कर लेना।"

चोर ने उत्तर दिया—"ब्राह्मण की हत्या करते हुए यदि ब्राह्मण बच गया और जागकर उसने रखवाली शुरू कर दी तो मैं चोरी नहीं कर सकूंगा। इसलिये पहले मुझे अपना काम कर लेने दे।"

दोनों में इस तरह की कहा-सुनी हो ही रही थी कि शोर सुनकर ब्राह्मण जाग उठा। उसे जागा हुआ देख चोर ने ब्राह्मण से कहा—"ब्राह्मण ! यह राक्षस तेरी जान लेने लगा था, मैंने इसके हाथ से तेरी रक्षा कर दी।"

राक्षस बोला—"ब्राह्मण ! यह चोर तेरे बैलों को चुराने आया था, मैंने तुझे बचा लिया।"

इस बातचीत में ब्राह्मण सावधान हो गया। लाठी उठाकर वह अपनी रक्षा के लिये तैयार हो गया। उसे तैयार देखकर दोनों भाग गये।

× × ×

उसकी बात सुनने के बाद अरिमर्दन ने फिर दूसरे मन्त्री 'प्राकारकर्ण' से पूछा—"सचिव ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

प्राकारकर्ण ने कहा—"देव ! यह शरणागत व्यक्ति अवध्य ही है। हमें अपने परस्पर के मर्मों की रक्षा करनी चाहिये। जो ऐसा नहीं करते वे वल्मीक में बैठे साँप की तरह नष्ट हो जाते हैं।"

अरिमर्दन ने पूछा—"किस तरह ?"

प्राकारकर्ण ने तब वल्मीक और साँप की यह कहानी सुनाई—

१०.

घर का भेदी

परस्परस्य मर्माणि ये न रक्षन्ति जन्तवः ।
त एव निधनं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥

. . . .

एक दूसरे का भेद खोलने वाले स्वयं
नष्ट हो जाते हैं।

. . . .

एक नगर में देवशक्ति नाम का राजा रहता था। उसके पुत्र के पेट में एक साँप चला गया था। उस साँप ने वहीं अपना बिल बना लिया था। पेट में बैठे साँप के कारण उसके शरीर का प्रति-दिन क्षय होता जा रहा था। बहुत उपचार करने के बाद भी जब स्वास्थ्य में कोई सुधार न हुआ तो अत्यन्त निराश होकर राजपुत्र अपने राज्य से बहुत दूर दूसरे प्रदेश में चला गया। और वहाँ सामान्य भिखारी की तरह मन्दिर में रहने लगा।

उस प्रदेश के राजा बलि की दो नौजवान लड़कियाँ थीं। वह दोनों प्रति-दिन सुबह अपने पिता को प्रणाम करने आती थीं। उनमें से एक राजा को नमस्कार करती हुई कहती थी—

"महाराज ! जय हो। आप की कृपा से ही संसार के सब सुख हैं।" दूसरी कहती थी—"महाराज ! ईश्वर आप के कर्मों का फल दे।" दूसरी के वचन को सुनकर महाराज क्रोधित हो जाता था। एक दिन इसी क्रोधावेश में उसने मन्त्री को बुलाकर आज्ञा दी—"मन्त्री ! इस कटु बोलने वाली लड़की को किसी ग़रीब परदेसी के हाथों में दे दो, जिससे यह अपने कर्मों का फल स्वयं चखे।"

मन्त्रियों ने राजाज्ञा से उस लड़की का विवाह मन्दिर में सामान्य भिखारी की तरह ठहरे परदेसी राजपुत्र के साथ कर दिया। राजकुमारी ने उसे ही अपना पति मानकर सेवा की। दोनों ने उस देश को छोड़ दिया।

थोड़ी दूर जाने पर वे एक तालाब के किनारे ठहरे। वहाँ राजपुत्र को छोड़कर उसकी पत्नी पास के गाँव से घी-तेल-अन्न आदि सौदा लेने गई। सौदा लेकर जब वह वापिस आ रही थी, तब उसने देखा कि उसका पति तालाब से कुछ दूरी पर एक साँप के बिल के पास सो रहा है। उसके मुख से एक फनियल साँप बाहर निकलकर हवा खा रहा था। एक दूसरा साँप भी अपने बिल से निकल कर फन फैलाये वहीं बैठा था। दोनों में बात-चीत हो रही थी।

बिल वाला साँप पेट वाले साँप से कह रहा था—"दुष्ट ! तू इतने सर्वांग सुन्दर राजकुमार का जीवन क्यों नष्ट कर रहा है ?"

पेट वाला साँप बोला—"तू भी तो इस बिल में पड़े स्वर्ण-

कलश को दूषित कर रहा है।"

बिल वाला साँप बोला—"तो क्या तू समझता है कि तुझे पेट से निकालने की दवा किसी को भी मालूम नहीं। कोई भी व्यक्ति राजकुमार को उकाली हुई कांजी की राई पिलाकर तुझे मार सकता है।"

पेट वाला साँप बोला—"तुझे भी तो तेरे बिल में गरम तेल डालकर कोई भी मार सकता है।"

इस तरह दोनों ने एक दूसरे का भेद खोल दिया। राज-कन्या ने दोनों की बातें सुन ली थीं। उसने उनकी बताई विधियों से ही दोनों का नाश कर दिया। उसका पति भी नीरोग होगया; और बिल में से स्वर्ण-भरा कलश पाकर गरीबी भी दूर होगई। तब, दोनों अपने देश को चल दिये। राजपुत्र के माता-पिता दोनों ने उनका स्वागत किया।

× × ×

अरिमर्दन ने भी प्राकारकर्ण की बात का समर्थन करते हुए यही निश्चय किया कि स्थिरजीवी की हत्या न की जाय। रक्ताक्ष का उलूकराज के इस निश्चय से गहरा मतभेद था। वह स्थिरजीवी की मृत्यु में ही उल्लुओं का हित देखता था। अतः उसने अपनी सम्मति प्रकट करते हुए अन्य मन्त्रियों से कहा कि तुम अपनी मूर्खता से उलूकवंश का नाश कर दोगे। किन्तु रक्ताक्ष की बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

उलूकराज के सैनिकों ने स्थिरजीवी कौवे को शैया पर लिटा-

कर अपने पर्वतीय दुर्ग की ओर कूच कर दिया। दुर्ग के पास पहुँच कर स्थिरजीवी ने उलूकराज से निवेदन किया—"महाराज ! मुझ पर इतनी कृपा क्यों करते हो ? मैं इस योग्य नहीं हूँ। अच्छा हो, आप मुझे जलती हुई आग में डाल दें।"

उलूकराज ने कहा—"ऐसा क्यों कहते हो ?"

स्थिरजीवी—"स्वामी ! आग में जलकर मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि मेरा वायसत्व आग में नष्ट हो जाय और मुझ में उलूकत्व आ जाय, तभी मैं उस पापी मेघवर्ण से बदला ले सकूंगा।"

रक्ताक्ष स्थिरजीवी की इस पाखंडभरी चालों को खूब समझ रहा था। उसने कहा—"स्थिरजीवी ! तू बड़ा चतुर और कुटिल है। मैं जानता हूँ कि उल्लू बनकर भी तू कौवों का ही हित सोचेगा। तुझे भी उसी चुहिया के तरह अपने वंश से प्रेम है, जिसने सूर्य, चन्द्र, वायु, पर्वत आदि वरों को छोड़कर एक चूहे का ही वरण किया था।

मन्त्रियों ने रक्ताक्ष से पूछा—"वह किस तरह ?"

रक्ताक्ष ने तब चुहिया के स्वयंवर की यह कथा सुनाई—

११.
चुहिया का स्वयंवर

"स्वजातिः दुरतिक्रमा"

. . . .

स्वजातीय ही सब को प्रिय होते हैं।

. . . .

गंगा नदी के किनारे एक तपस्वियों का आश्रम था। वहाँ याज्ञवल्क्य नाम के मुनि रहते थे। मुनिवर एक नदी के किनारे जल लेकर आचमन कर रहे थे कि पानी से भरी हथेली में ऊपर से एक चुहिया गिर गई। उस चुहिया को आकाश में बाज़ लिये जा रहा था। उसके पंजे से छूटकर वह नीचे गिर गई। मुनि ने उसे पीपल के पत्ते पर रखा और फिर से गंगाजल में स्नान किया। चुहिया में अभी प्राण शेष थे। उसे मुनि ने अपने प्रताप से कन्या का रूप दे दिया, और अपने आश्रम में ले आये। मुनि-पत्नी को कन्या अर्पित करते हुए मुनि ने कहा कि इसे अपनी ही लड़की की तरह पालना। उनके अपनी कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये मुनिपत्नी ने उसका लालन-पालन बड़े प्रेम से किया। १२ वर्ष तक वह उनके आश्रम में पलती रही।

जब वह विवाह योग्य अवस्था की हो गई तो पत्नी ने मुनि से कहा—"नाथ ! अपनी कन्या अब विवाह योग्य हो गई है। इसके विवाह का प्रबन्ध कीजिये।" मुनि ने कहा—"मैं अभी आदित्य को बुलाकर इसे उसके हाथ सौंप देता हूँ। यदि इसे स्वीकार होगा तो उसके साथ विवाह कर लेगी, अन्यथा नहीं।" मुनि ने आदित्य को बुलाकर अपनी कन्या से पूछा—"पुत्री ! क्या तुझे यह त्रिलोक का प्रकाश देने वाला सूर्य पतिरूप से स्वीकार है ?" पुत्री ने उत्तर दिया—"तात ! यह तो आग जैसा गरम है, मुझे स्वीकार नहीं। इससे अच्छा कोई वर बुलाइये।" मुनि ने सूर्य से पूछा कि वह अपने से अच्छा कोई वर बतलाये। सूर्य ने कहा—"मुझ से अच्छे मेघ हैं, जो मुझे ढककर छिपा लेते हैं।" मुनि ने मेघ को बुलाकर पूछा—"क्या यह तुझे स्वीकार है ?" कन्या ने कहा—"यह तो बहुत काला है। इससे भी अच्छे किसी वर को बुलाओ।" मुनि ने मेघ से भी पूछा कि उससे अच्छा कौन है। मेघ ने कहा, "हम से अच्छी वायु है, जो हमें उड़ाकर दिशा-दिशाओं में ले जाती है"। मुनि ने वायु को बुलाया और कन्या से स्वीकृति पूछी। कन्या ने कहा—"तात ! यह तो बड़ी चंचल है। इससे भी किसी अच्छे वर को बुलाओ।" मुनि ने वायु से भी पूछा कि उस से अच्छा कौन है। वायु ने कहा, "मुझ से अच्छा पर्वत है, जो बड़ी से बड़ी आँधी में भी स्थिर रहता है।" मुनि ने पर्वत को बुलाया तो कन्या ने कहा—"तात ! यह तो बड़ा कठोर और गंभीर है, इससे अधिक अच्छा कोई वर बुलाओ।" मुनि

ने पर्वत से कहा कि वह अपने से अच्छा कोई वर सुझाये। तब पर्वत ने कहा—"मुझ से अच्छा चूहा है, जो मुझे तोड़कर अपना बिल बना लेता है।" मुनि ने तब चूहे को बुलाया और कन्या से कहा—"पुत्री ! यह मूषकराज तुझे स्वीकार हो तो इससे विवाह कर ले।" मुनिकन्या ने मूषकराज को बड़े ध्यान से देखा। उसके साथ उसे विलक्षण अपनापन अनुभव हो रहा था। प्रथम दृष्टि में ही वह उस पर मुग्ध होगई और बोली—"मुझे मूषिका बनाकर मूषकराज के हाथ सौंप दीजिये।"

मुनि ने अपने तपोबल से उसे फिर चुहिया बना दिया और चूहे के साथ उसका विवाह कर दिया।

× × ×

रक्ताक्ष द्वारा यह कहानी सुनने के बाद भी उलूकराज के सैनिक स्थिरजीवी को अपने दुर्ग में ले गये। दुर्ग के द्वार पर पहुँच कर उलूकराज अरिमर्दन ने अपने साथियों से कहा कि स्थिरजीवी को वही स्थान दिया जाय जहाँ वह रहना चाहे। स्थिरजीवी ने सोचा कि उसे दुर्ग के द्वार पर ही रहना चाहिये, जिससे दुर्ग से बाहर जाने का अवसर मिलता रहे। यही सोच उसने उलूकराज से कहा—"देव ! आपने मुझे यह आदर देकर बहुत लज्जित किया है। मैं तो आप का सेवक ही हूँ, और सेवक के स्थान पर ही रहना चाहता हूँ। मेरा स्थान दुर्ग के द्वार पर ही रखिये। द्वार की जो धूलि आप के पद-कमलों से पवित्र होगी उसे अपने मस्तक पर रखकर ही मैं अपने को सौभाग्यवान मानूंगा।"

उलूकराज इन मीठे वचनों को सुनकर फूले न समाये। उन्होंने अपने साथियों को कहा कि स्थिरजीवी को यथेष्ट भोजन दिया जाय।

प्रतिदिन स्वादु और पुष्ट भोजन खाते-खाते स्थिरजीवी थोड़े ही दिनों में पहले जैसा मोटा और बलवान हो गया। रक्ताक्ष ने जब स्थिरजीवी को हृष्टपुष्ट होते देखा तो वह मन्त्रियों से बोला—"यहाँ सभी मूर्ख हैं। जिस तरह उस सोने की बीठ देने वाले पक्षी ने कहा था कि यहाँ सब मूर्ख हैं, उसी तरह मैं कहता हूँ "यहाँ सभी मूर्खमंडल है"।

मन्त्रियों ने पूछा—"किस पक्षी की तरह ?"

तब रक्ताक्ष ने स्वर्णपक्षी की यह कहानी सुनाई—

१२.

मूर्खमंडली

'सर्वं वै मूर्खमंडलम्'

. . . .

अचानक हाथ में आये धन को अविश्वासवश छोड़ना मूर्खता है। उसे छोड़ने वाले मूर्ख-मंडल का कोई उपाय नहीं।

. . . .

एक पर्वतीय प्रदेश के महाकाय वृक्ष पर सिन्धुक नाम का एक पक्षी रहता था। उसकी विष्ठा में स्वर्ण-कण होते थे। एक दिन एक व्याध उधर से गुज़र रहा था। व्याध को उसकी विष्ठा के स्वर्णमयी होने का ज्ञान नहीं था। इससे सम्भव था कि व्याध उसकी उपेक्षा करके आगे निकल जाता। किन्तु मूर्ख सिन्धुक पक्षी ने वृक्ष के ऊपर से व्याध के सामने ही स्वर्ण-कण-पूर्ण विष्ठा कर दी। उसे देख व्याध ने वृक्ष पर जाल फैला दिया और स्वर्ण के लोभ से उसे पकड़ लिया।

उसे पकड़कर व्याध अपने घर ले आया। वहाँ उसे पिंजरे में रख लिया। लेकिन, दूसरे ही दिन उसे यह डर सताने लगा

कि कहीं कोई आदमी पक्षी की विष्ठा के स्वर्णमय होने की बात राजा को बता देगा तो उसे राजा के सम्मुख दरबार में पेश होना पड़ेगा। संभव है राजा उसे दण्ड भी दे। इस भय से उसने स्वयं राजा के सामने पक्षी को पेश कर दिया।

राजा ने पक्षी को पूरी सावधानी के साथ रखने की आज्ञा निकाल दी। किन्तु राजा के मन्त्री ने राजा को सलाह दी कि, "इस व्याध की मूर्खतापूर्ण बात पर विश्वास करके उपहास का पात्र न बनो। कभी कोई पक्षी भी स्वर्ण-मयी विष्ठा दे सकता है? इसे छोड़ दीजिये।" राजा ने मन्त्री की सलाह मानकर उसे छोड़ दिया। जाते हुए वह राज्य के प्रवेश-द्वार पर बैठकर फिर स्वर्णमयी विष्ठा कर गया; और जाते-जाते कहता गया :—

"पूर्वं तावदहं मूर्खो द्वितीयः पाशबन्धकः
ततो राजा च मन्त्री च सर्वं वै मूर्खमण्डलम् ॥

अर्थात्, पहले तो मैं ही मूर्ख था, जिसने व्याध के सामने विष्ठा की; फिर व्याध ने मूर्खता दिखलाई जो व्यर्थ ही मुझे राजा के सामने ले गया; उसके बाद राजा और मन्त्री भी मूर्खों के सरताज निकले। इस राज्य में सब मूर्ख-मंडल ही एकत्र हुआ है।

× × ×

रक्ताक्ष द्वारा कहानी सुनने के बाद भी मन्त्रियों ने अपने मूर्खताभरे व्यवहार में परिवर्तन नहीं किया। पहले की तरह ही वे स्थिरजीवी को अन्न-मांस खिला-पिला कर मोटा करते रहे।

रक्ताक्ष ने यह देख कर अपने पक्ष के साथियों से कहा कि

। यहाँ हमें नहीं ठहरना चाहिये। हम किसी दूसरे पर्वत की
दरा में अपना दुर्ग बना लेंगे। हमें उस बुद्धिमान् गीदड़ की
ह आने वाले संकट को देख लेना चाहिए, और देख कर
नी गुफा को छोड़ देना चाहिए जिसने शेर के डर से अपना
छोड़ दिया था।

उसके साथियों ने पूछा—"किस गीदड़ की तरह?"

रक्ताक्ष ने तब शेर और गीदड़ की वह कहानी सुनाई जिसमें
ना बोली थी।

१३.

बोलने वाली गुफा

"अनागतं यः कुरुते स शोभते"

. . . .

आने वाले संकट को देखकर अपना भावी कार्यक्रम निश्चय करने वाला सुखी रहता है

. . . .

एक जंगल में खर-नखर नाम का शेर रहता था। एक बार इधर-उधर बहुत दौड़-धूप करने के बाद उसके हाथ कोई शिकार नहीं आया। भूख-प्यास से उसका गला सूख रहा था। शाम होने पर उसे एक गुफा दिखाई दी। वह उस गुफा के अन्दर घुस गया और सोचने लगा—"रात के समय रहने के लिये इस गुफा में कोई जानवर अवश्य आयगा, उसे मारकर भूख मिटाऊँगा। तब तक इस गुफा में ही छिपकर बैठता हूँ।"

इस बीच उस गुफा का अधिवासी दधिपुच्छ नाम का गीदड़ वहां आ गया। उसने देखा, गुफा के बाहिर शेर के पद-चिन्हों की पंक्ति है। पद-चिन्ह गुफा के अन्दर तो गये थे, लेकिन बाहिर नहीं

आये थे। गीदड़ ने सोचा—"मेरी गुफा में कोई शेर गया अवश्य है, लेकिन वह बाहिर आया या नहीं, इसका पता कैसे लगाया जाय।" अन्त में उसे एक उपाय सूझ गया। गुफा के द्वार पर बैठकर वह किसी को संबोधन करके पुकारने लगा—"मित्र! मैं आ गया हूँ। तूने मुझे वचन दिया था कि मैं आऊँगा तो तू मुझसे बात करेगा। अब चुप क्यों है?"

गीदड़ की पुकार सुनकर शेर ने सोचा, 'शायद यह गुफा गीदड़ के आने पर खुद बोलती है और गीदड़ से बात करती है; जो आज मेरे डर से चुप है। इसकी चुप्पी से गीदड़ को मेरे यहा होने का सन्देह हो जायगा। इसलिये मैं स्वयं बोलकर गीदड़ को जवाब देता हूँ।' यह सोचकर शेर स्वयं गर्ज उठा।

शेर की गर्जना सुनकर गुफा भयङ्कर आवाज़ से गूंज उठी। गुफा से दूर के जानवर भी डर से इधर-उधर भागने लगे। गीदड़ भी गुफा के अन्दर से आती शेर की आवाज़ सुनकर वहां से भाग गया। अपनी मूर्खता से शेर ने स्वयं ही उस गीदड़ को भगा दिया जिसे पास लाकर वह खाना चाहता था। उसने यह न सोचा कि गुफा कभी बोल नहीं सकती। और गुफा का बोल सुनकर गीदड़ का संदेह पक्का हो जायगा।

× × ×

रक्ताक्ष ने उक्त कहानी कहने के बाद अपने साथियों से कहा कि ऐसे मूर्ख समुदाय में रहना विपत्ति को पास बुलाना है।

उसी दिन परिवारसमेत रक्ताक्ष वहाँ से दूर किसी पर्वत-कन्दरा में चला गया।

रक्ताक्ष के विदा होने पर स्थिरजीवी बहुत प्रसन्न होकर सोचने लगा—"यह अच्छा ही हुआ कि रक्ताक्ष चला गया। इन मूर्ख मन्त्रियों में अकेला वही चतुर और दूरदर्शी था।"

रक्ताक्ष के जाने के बाद स्थिरजीवी ने उल्लुओं के नाश की तैयारी पूरे जोर से शुरू करदी। छोटी-छोटी लकड़ियाँ चुनकर वह पर्वत की गुफा के चारों ओर रखने लगा। जब पर्याप्त लकड़ियाँ एकत्र हो गईं तो वह एक दिन सूर्य के प्रकाश में उल्लुओं के अन्धे होने के बाद अपने पहले मित्र राजा मेघवर्ण के पास गया, और बोला—"मित्र ! मैंने शत्रु को जलाकर भस्म कर देने की पूरी योजना तैयार करली है। तुम भी अपनी चोंचों में एक-एक जलती लकड़ी लेकर उलूकराज के दुर्ग के चारों ओर फैला दो। दुर्ग जलकर राख हो जायगा। शत्रुदल अपने ही घर में जलकर नष्ट हो जायगा।"

यह बात सुनकर मेघवर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने स्थिरजीवी से कहा—"महाराज, कुशल-क्षेम से तो रहे, बहुत दिनों के बाद आपके दर्शन हुए हैं।"

स्थिरजीवी ने कहा—"वत्स ! यह समय बातें करने का नहीं, यदि किसी शत्रु ने वहाँ जाकर मेरे यहाँ आने की सूचना दे दी तो बना-बनाया खेल बिगड़ जाएगा। शत्रु कहीं दूसरी जगह भाग जाएगा। जो काम शीघ्रता से करने योग्य हो, उसमें विलम्ब नहीं करना

चाहिए। शत्रुकुल का नाश करके फिर शांति से बैठ कर बातें करेंगे।

मेघवर्ण ने भी यह बात मान ली। कौवे सब अपनी चोंचों में एक-एक जलती हुई लकड़ी लेकर शत्रु-दुर्ग की ओर चल पड़े और वहाँ जाकर लकड़ियाँ दुर्ग के चारों ओर फैला दीं। उल्लुओं के घर जलकर राख हो गए और सारे उल्लू अन्दर ही अन्दर तड़प कर मर गए।

इस प्रकार उल्लुओं का वंशनाश करके मेघवर्ण वायसराज फिर अपने पुराने पीपल के वृक्ष पर आ गया। विजय के उपलक्ष में सभा बुलाई गई। स्थिरजीवो को बहुत सा पुरस्कार देकर मेघवर्ण ने उस से पूछा—"महाराज! आपने इतने दिन शत्रु के दुर्ग में किस प्रकार व्यतीत किये? शत्रु के बीच रहना तो बड़ा संकटापन्न है। हर समय प्राण गले में अटके रहते हैं।"

स्थिरजीवी ने उत्तर दिया--"तुम्हारी बात ठीक है, किन्तु मैं तो आपका सेवक हूँ। सेवक को अपनी तपश्चर्या के अंतिम फल का इतना विश्वास होता है कि वह क्षणिक कष्टों की चिन्ता नहीं करता। इसके अतिरिक्त, मैंने यह देखा कि तुम्हारे प्रतिपक्षी उलूकराज के मन्त्री महामूर्ख हैं। एक रक्ताक्ष ही बुद्धिमान था, वह भी उन्हें छोड़ गया। मैंने सोचा, यही समय बदला लेने का है। शत्रु के बीच विचरने वाले गुप्तचर को मान-अपमान की चिन्ता छोड़नी ही पड़ती है। वह केवल अपने राजा का

स्वार्थ सोचता है। मान-मर्यादा की चिन्ता का त्याग करके वह स्वार्थ-साधन के लिये चिन्ताशील रहता है। अवसर देखकर उसे शत्रु को भी पीठ पर उठाकर चलना चाहिए, जैसे काले नाग ने मेंढकों को पीठ पर उठाया था, और सैर कराई थी।"

मेघवर्ण ने पूछा—"वह कैसे ?"

स्थिरजीवी ने तब सांप और मेंढकों की यह कहानी सुनाई—

१४.

स्वार्थसिद्धि परम लक्ष्य !

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः ।
स्वार्थमभ्युद्धरेत्प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥

. . . .

बुद्धमानी इसी में है कि स्वार्थ सिद्धि के लिये
मानापमान की चिन्ता छोड़ी जाय ।

. . . .

वरुण पर्वत के पास एक जङ्गल में मन्दविष नाम का बूढ़ा साँप रहता था । उसे बहुत दिनों से कुछ खाने को नहीं मिला था। बहुत भाग-दौड़ किये बिना खाने का उसने यह उपाय किया कि वह एक तालाब के पास चला गया । उसमें सैंकड़ों मेंढक रहते थे। तालाब के किनारे जाकर वह बहुत उदास और विरक्त-सा मुख बना कर बैठ गया । कुछ देर बाद एक मेंढक ने तालाब से निकल कर पूछा—"मामा ! क्या बात है, आज कुछ खाते-पीते नहीं हो । इतने उदास से क्यों हो ?"

साँप ने उत्तर दिया—"मित्र ! मेरे उदास होने का विशेष कारण है । मेरे यहाँ आने का भी वही कारण है ।"

मेंढक ने जब कारण पूछा तो साँप ने झूठमूठ एक कहानी बना ली। वह बोला—"बात यह है कि आज सुबह मैं एक मेंढक को मारने के लिए जब आगे बढ़ा तो मेंढक वहाँ से उछल कर कुछ ब्राह्मणों के बीच में चला गया। मैं भी उसके पीछे-पीछे वहाँ गया। वहाँ जाकर एक ब्राह्मण-पुत्र का पैर मेरे शरीर पर पड़ गया। तब मैंने उसे डस लिया। वह ब्राह्मण-पुत्र वहीं मर गया। उसके पिता ब्राह्मण ने मुझे क्रोध से जलते हुए यह शाप दिया कि तुझे मेंढकों का वाहक बन कर उन्हें सैर कराना होगा। तेरी सेवा से प्रसन्न होकर जो कुछ वे तुझे देंगे, वही तेरा आहार होगा। स्वतन्त्र रूप से तू कुछ भी खा नहीं सकेगा। यहाँ पर मैं तुम्हारा वाहक बनकर ही आया हूँ।"

उस मेंढक ने यह बात अपने साथी मेंढकों को भी कह दी। सब मेंढक बड़े खुश हुए। उन्होंने इसका वृत्तान्त अपने राजा 'जलपाद' को भी सुनाया। जलपाद ने अपने मन्त्रियों से सलाह करके यही निश्चय किया कि साँप को वाहक बनाकर उसकी सेवा से लाभ उठाया जाय। जलपाद के साथ सभी मेंढक साँप की पीठ पर सवार हो गए। जिनको उसकी पीठ पर स्थान नहीं मिला उन्होंने साँप के पीछे गाड़ी लगा कर उसकी सवारी की।

सांप पहले तो बड़ी तेज़ी से दौड़ा, बाद में उसकी चाल धीमी पड़ गई। जलपाद के पूछने पर इसका कारण यह बतलाया "आज भोजन न मिलने से मेरी शक्ति क्षीन हो गई है, क़दम नहीं उठते।"

यह सुन कर जलपाद ने उसे छोटे-छोटे मेंढकों को खाने की आज्ञा दे दी।

सांप ने कहा—"मेंढक महाराज ! आपकी सेवा से पाये पुरस्कार को भोग कर ही मेरी तृप्ति होगी, यही ब्राह्मण का अभिशाप है। इसलिये आपकी आज्ञा से मैं बहुत उपकृत हुआ हूँ।" जलपाद सांप की बात से बहुत प्रसन्न हुआ।

थोड़ी देर बाद एक और काला सांप उधर से गुज़रा। उसने मेंढकों को सांप की सवारी करते देखा तो आश्चर्य में डूब गया। आश्चर्यान्वित होकर वह मन्दविष से बोला—"भाई ! जो हमारा भोजन है, उसे ही तुम पीठ पर सवारी करा रहे हो। यह तो स्वभाव-विरुद्ध बात है। मन्दविष ने उत्तर दिया—"मित्र ! यह बात मैं भी जानता हूँ, किन्तु समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

मन्दविष ने अनुकूल अवसर पाकर धीरे-धीरे सब मेंढकों को खा लिया। मेंढकों का वंशनाश ही हो गया।

× × ×

वायसराज मेघवर्ण ने स्थिरजीवी को धन्यवाद देते हुए कहा—"मित्र, आप बड़े पुरुषार्थी और दूरदर्शी हैं। एक कार्य को प्रारंभ करके उसे अन्त तक निभाने की आपकी क्षमता अनुपम है। संसार में कई तरह के लोग हैं। नीचतम प्रवृत्ति के वे हैं जो विघ्न-भय से किसी भी कार्य का आरंभ नहीं करते, मध्यम वे हैं जो विघ्न-भय से हर काम को बीच में छोड़ देते हैं, किन्तु उत्कृष्ट

वही हैं जो सैंकड़ों विघ्नों के होते हुए भी आरंभ किये गये काम को बीच में नहीं छोड़ते। आपने मेरे शत्रुओं का समूल नाश करके उत्तम कार्य किया है।"

स्थिरजीवी ने उत्तर दिया—"महाराज! मैंने अपना धर्म पालन किया। दैव ने आपका साथ दिया। पुरुषार्थ बहुत बड़ी वस्तु है, किन्तु दैव अनुकूल न हो तो पुरुषार्थ भी फलित नहीं होता। आपको अपना राज्य मिल गया। किन्तु स्मरण रखिये, राज्य क्षण-स्थायी होते हैं। बड़े-बड़े विशाल राज्य क्षणों में बनते और मिटते रहते हैं। शाम के रंगीन बादलों की तरह उनकी आभा भी क्षण-जीवी होती है। इसलिये राज्य के मद में आकर अन्याय नहीं करना, और न्याय से प्रजा का पालन करना। राजा प्रजा का स्वामी नहीं, सेवक होता है।"

इसके बाद स्थिरजीवी की सहायता से मेघवर्ण बहुत वर्षों तक सुखपूर्वक राज्य करता रहा।

॥ तृतीय तन्त्र समाप्त ॥

चतुर्थ तन्त्र—

लब्धप्रणाशम्

इस तन्त्र में—

१. मेंढक साँप की मित्रता
२. आज़माए को आज़माना
३. समय का राग, कुसमय की टर्र
४. गीदड़ गीदड़ ही रहता है
५. स्त्री का विश्वास
६. स्त्री-भक्त राजा
७. वाचाल गधा
८. न घर का न घाट का
९. घमंड का सिर नीचा
१०. राजनीतिज्ञ गीदड़
११. कुत्ते का वैरी कुत्ता
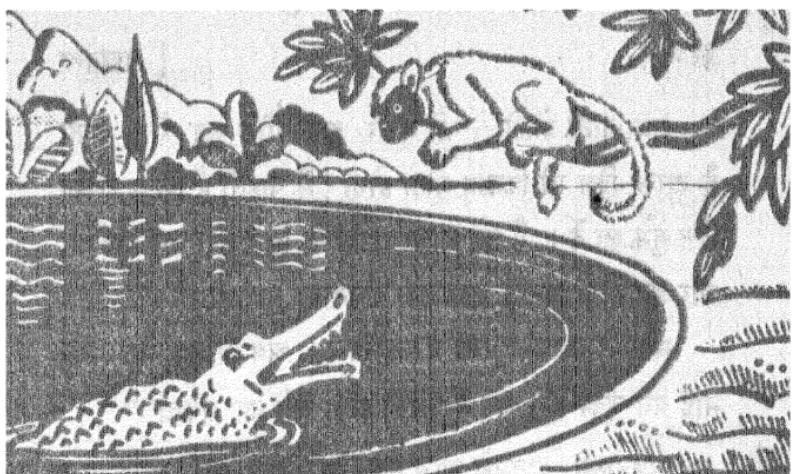
एक बड़ी झील के तट पर सब ऋतुओं में मीठे फल देने वाला जामुन का वृक्ष था। उस वृक्ष पर रक्तमुख नाम का बन्दर रहता था। एक दिन झील से निकल कर एक मगरमच्छ उस वृक्ष के नीचे आ गया। बन्दर ने उसे जामुन के वृक्ष से फल तोड़कर खिलाये। दोनों में मैत्री हो गई। मगरमच्छ जब भी वहाँ आता, बन्दर उसे अतिथि मानकर उसका सत्कार करता था। मगरमच्छ भी जामुन खाकर बन्दर से मीठी-मीठी बातें करता। इसी तरह दोनों की मैत्री गहरी होती गई। मगरमच्छ कुछ जामुनें वहीं खा लेता था, कुछ अपनी पत्नी के लिये अपने साथ घर ले जाता था।

एक दिन मगर-पत्नी ने पूछा—"नाथ! इतने मीठे फल तुम कहाँ से और कैसे ले आते हो?"

मगर ने उत्तर दिया—"झील के किनारे मेरा एक मित्र बन्दर रहता है। वही मुझे ये फल देता है।"

मगर-पत्नी बोली—"जो बन्दर इतने मीठे फल रोज़ खाता है उसका दिल भी कितना मीठा होगा ! मैं चाहती हूँ कि तू उसका दिल मुझे ला दे। मैं उसे खाकर सदा के लिये तेरी बन जाऊँगी, और हम दोनों अनन्त काल तक यौवन का सुख भोगेंगे।"

मगर ने कहा—"ऐसा न कह प्रिये ! अब तो वह मेरा धर्म-भाई बन चुका है। अब मैं उसकी हत्या नहीं कर सकता।"

मगर-पत्नी—"तुमने आज तक मेरा कहा नहीं मोड़ा था। आज यह नई बात कर रहे हो। मुझे सन्देह होता है कि वह बन्दर नहीं, बन्दरी होगी; तुम्हारा उससे लगाव हो गया होगा। तभी, तुम प्रतिदिन वहाँ जाते हो। मुझे यह बात पहले मालूम नहीं थी। अब मुझे पता लगा कि तुम किसी और के लिये लम्बे सांस लेते हो, कोई और ही तुम्हारे दिल की रानी बन चुकी है।"

मगरमच्छ ने पत्नी के पैर पकड़ लिये। उसे गोदी में उठा लिया और कहा—"मानिनि! मैं तेरा दास हूँ, तू मुझे प्राणों से भी प्रिय है, क्रोध न कर, तुझे अप्रसन्न करके मैं जीवित नहीं रहूँगा।"

मगर-पत्नी ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"धूर्त्त ! दिल में तो तेरे दूसरी ही बसी हुई है, और मुझे झूठी प्रेमलीला से ठगना चाहता है। तेरे दिल में अब मेरे लिये जगह ही कहाँ है ? मुझ से प्रेम होता तो तू मेरे कथन को यों न ठुकरा देता। मैंने भी निश्चय कर लिया है कि जब तक तुम उस बन्दर का दिल लेकर मुझे नहीं खिलाओगे तब तक अनशन करूँगी, भूखी रहूँगी।"

पत्नी के आमरण अनशन की प्रतिज्ञा ने मगरमच्छ को

दुविधा में डाल दिया। दूसरे दिन वह बहुत दुःखी दिल से बन्दर के पास गया। बन्दर ने पूछा—"मित्र! आज हँसकर बात नहीं करते, चेहरा कुम्हलाया हुआ है, क्या कारण है इसका ?"

मगरमच्छ ने कहा—"मित्रवर! आज तेरी भाबी ने मुझे बहुत बुरा-भला कहा। वह कहने लगी कि तुम बड़े निर्मोही हो, अपने मित्र को घर लाकर उसका सत्कार भी नहीं करते; इस कृतघ्नता के पाप से तुम्हारा परलोक में भी छुटकारा नहीं होगा।"

बन्दर बड़े ध्यान से मगरमच्छ की बात सुनता रहा।

मगरमच्छ कहता गया—"मित्र! मेरी पत्नी ने आज आग्रह किया है कि मैं उसके देवर को लेकर आऊँ। तुम्हारी भाबी ने तुम्हारे सत्कार के लिये अपने घर को रत्नों कीबन्दनवार से सजाया है। वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।"

बन्दर ने कहा—"मित्रवर! मैं तो जाने को तैयार हूँ, किन्तु मैं तो भूमि पर ही चलना जानता हूँ, जल पर नहीं; कैसे जाऊँगा ?"

मगरमच्छ—"तुम मेरी पीठ पर चढ़ जाओ, मैं तुम्हें सकुशल घर पहुँचा दूंगा।"

बन्दर मगरमच्छ की पीठ पर चढ़ गया। दोनों जब झील के बीचोंबीच अगाध पानी में पहुँचे तो बन्दर ने कहा—"ज़रा धीमे चलो मित्र! मैं तो पानी की लहरों से बिल्कुल भीग गया हूँ। मुझे सर्दी लगती है।"

मगरमच्छ ने सोचा, 'अब यह बन्दर मुझ से बचकर नहीं जा सकता, इसे अपने मन की बात कह देने में कोई हानि नहीं है। मृत्यु से पहले इसे अपने देवता के स्मरण का समय भी मिल जायगा।'

यह सोचकर मगरमच्छ ने अपने दिल का भेद खोल दिया—"मित्र! मैं तुझे अपनी पत्नी के आग्रह पर मारने के लिये यहाँ लाया हूँ। अब तेरा काल आ पहुँचा है। भगवान् का स्मरण कर, तेरे जीवन की घड़ियां अधिक नहीं हैं।"

बन्दर ने कहा—"भाई! मैंने तेरे साथ कौन सी बुराई की है, जिसका बदला तू मेरी मौत से लेना चाहता है? किस अभिप्राय से तू मुझे मारना चाहता है, बतला तो दे।"

मगरमच्छ—"अभिप्राय तो एक ही है, वह यह कि मेरी पत्नी तेरे मीठे दिल का रसास्वाद करना चाहती है।"

यह सुनकर नीति-कुशल बन्दर ने बड़े धीरज से कहा—"यदि यही बात थी तो तुमने मुझे वहीं क्यों नहीं कह दिया। मेरा दिल तो वहाँ वृक्ष के एक बिल में सदा सुरक्षित पड़ा रहता है; तेरे कहने पर मैं वहीं तुझे अपनी भावी के लिये भेंट दे देता। अब तो मेरे पास दिल है ही नहीं। भावी भूखी रह जायगी। मुझे तू अब दिल के बिना ही लिये जा रहा है।"

मगरमच्छ बन्दर की बात सुनकर प्रसन्न हो गया और बोला—"यदि ऐसा ही है तो चल! मैं तुझे फिर जामुन के वृक्ष तक पहुँचा देता हूँ। तू मुझे अपना दिल दे देना; मेरी दुष्ट पत्नी उसे खाकर

प्रसन्न हो जायगी ।" यह कहकर वह बन्दर को वापिस ले आया।

बन्दर किनारे पर पहुँचकर जल्दी से वृक्ष पर चढ़ गया। उसे, मानो नया जन्म मिला था। नीचे से मगरमच्छ ने कहा—"मित्र! अब वह अपना दिल मुझे दे दो। तेरी भाबी प्रतीक्षा कर रही होगी।"

बन्दर ने हँसते हुए उत्तर दिया—"मूर्ख! विश्वासघातक! तुझे इतना भी पता नहीं कि किसी के शरीर में दो दिल नहीं होते। कुशल चाहता है तो यहाँ से भाग जा, और आगे कभी यहाँ मत आना।"

मगरमच्छ बहुत लज्जित होकर सोचने लगा, 'मैंने अपने दिल का भेद कहकर अच्छा नहीं किया'। फिर से उसका विश्वास पाने के लिये बोला—"मित्र! मैंने तो हँसी-हँसी में वह बात कही थी। उसे दिल पर न लगा। अतिथि बनकर हमारे घर पर चल। तेरी भाबी बड़ी उत्कंठा से तेरी प्रतीक्षा कर रही है।"

बन्दर बोला—"दुष्ट! अब मुझे धोखा देने की कोशिश मत कर। मैं तेरे अभिप्राय को जान चुका हूँ। भूखे आदमी का कोई भरोसा नहीं। ओछे लोगों के दिल में दया नहीं होती। एक बार विश्वास-घात होने के बाद मैं अब उसी तरह तेरा विश्वास नहीं करूँगा, जिस तरह गंगदत्त ने नहीं किया था।"

मगरमच्छ ने पूछा—"किस तरह?"

बन्दर ने तब गंगदत्त की कथा सुनाई—

१.

मेंढक-साँप की मित्रता

"योऽमित्रं कुरुते मित्रं वीर्याभ्यधिकमात्मनः ।
स करोति न सन्देहः स्वयं हि विषभक्षणम् ॥"

. . . .

अपने से अधिक बलशाली शत्रु को मित्र
बनाने से अपना ही नाश होता है ।

. . . .

एक कूएँ में गंगदत्त नाम का मेंढक रहता था। वह अपने मेंढक-दल का सरदार था। अपने बन्धु-बान्धवों के व्यवहार से खिन्न होकर वह एक दिन कुएँ से बाहर निकल आया। बाहर आकर वह सोचने लगा कि किस तरह उनके बुरे व्यवहार का बदला ले।

यह सोचते-सोचते वह एक सर्प के बिल के द्वार तक पहुँचा। उस बिल में एक काला नाग रहता था। उसे देखकर उसके मन में यह विचार उठा कि इस नाग द्वारा अपनी बिरादरी के मेंढकों का नाश करवा दे। शत्रु से शत्रु का वध करवाना ही नीति है। कांटे से ही कांटा निकाला जाता है। यह सोचकर वह बिल में घुस गया।

बिल में रहने वाले नाग का नाम था 'प्रियदर्शन'। गंगदत्त उसे पुकारने लगा। प्रियदर्शन ने सोचा, 'यह साँप की आवाज़ नहीं है; तब कौन मुझे बुला रहा है ? किसी के कुल-शील से परिचिति पाये बिना उसके संग नहीं जाना चाहिये। कहीं कोई सपेरा ही उसे बुलाकर पकड़ने के लिये न आया हो।' अतः अपने बिल के अन्दर से ही उसने आवाज़ दी—"कौन है, जो मुझे बुला रहा है ?"

गंगदत्त ने कहा—"मैं गंगदत्त मेंढक हूं। तेरे द्वार पर तुझ से मैत्री करने आया हूँ।"

यह सुनकर साँप ने कहा—"यह बात विश्वास योग्य नहीं हो सकती। आग और घास में मैत्री नहीं हो सकती। भोजन-भोज्य में प्रेम कैसा ? वधिक और वध्य में स्वप्न में भी मित्रता असंभव है।"

गंगदत्त ने उत्तर दिया—"तेरा कहना सच है। हम परस्पर स्वभाव से वैरी हैं, किन्तु मैं अपने स्वजनों से अपमानित होकर प्रतिकार की भावना से तेरे पास आया हूँ।"

प्रियदर्शन—"तू कहाँ रहता है ?"

गंगदत्त—"कूएँ में।"

प्रियदर्शन—"पत्थर से चिने कूएँ में मेरा प्रवेश कैसे होगा ? प्रवेश होने के बाद मैं वहाँ बिल कैसे बनाऊँगा ?"

गंगदत्त—"इसका प्रबन्ध मैं कर दूंगा। वहाँ पहले ही बिल

बना हुआ है। वहाँ बैठकर तू बिना कष्ट सब मेंढकों का नाश कर सकता है।"

प्रियदर्शन बूढ़ा साँप था। उसने सोचा—'बुढ़ापे में बिना कष्ट भोजन मिलने का अवसर नहीं छोड़ना चाहिये। गंगदत्त के पीछे-पीछे वह कुएँ में उतर गया। वहाँ उसने धीरे-धीरे गंगदत्त के वे सब भाई-बन्धु खा डाले, जिनसे गंगदत्त का वैर था। जब सब ऐसे मेंढक समाप्त हो गये तो वह बोला—

"मित्र! तेरे शत्रुओं का तो मैंने नाश कर दिया। अब कोई भी ऐसा मेंढक शेष नहीं रहा जो तेरा शत्रु हो।" मेरा पेट अब कैसे भरेगा? तू ही मुझे यहाँ लाया था; तू ही मेरे भोजन की व्यवस्था कर।"

गंगदत्त ने उत्तर दिया—"प्रियदर्शन! अब मैं तुझे तेरे बिल तक पहुँचा देता हूँ।" जिस मार्ग से हम यहाँ आये थे, उसी मार्ग से बाहर निकल चलते हैं।"

प्रियदर्शन—"यह कैसे संभव है। उस बिल पर तो अब दूसरे साँप का अधिकार हो चुका होगा।"

गंगदत्त—"फिर क्या किया जाय?"

प्रियदर्शन—"अभी तक तूने मुझे अपने शत्रु मेंढकों को भोजन के लिये दिया है। अब दूसरे मेंढकों में से एक-एक करके मुझे देता जा; अन्यथा मैं सब को एक ही बार खाजाऊँगा।"

गंगदत्त अब अपने किये पर पछताने लगा। जो अपने से अधिक बलशाली शत्रु को मित्र बनाता है, उसकी यही दशा होती

है। बहुत सोचने के बाद उसने निश्चय किया कि वह शेष रह गये मेंढकों में से एक-एक को सांप का भोजन बनाता रहेगा। सर्वनाश के अवसर पर आधे को बचा लेने में ही बुद्धिमानी है। सर्वस्व-हरण के समय अल्पदान करना ही दूरदर्शिता है।

दूसरे दिन से साँप ने दूसरे मेंढकों को भी खाना शुरू कर दिया। वे भी शीघ्र ही समाप्त हो गये। अन्त में एक दिन सांप ने गंगदत्त के पुत्र यमुनादत्त को भी खा लिया। गंगदत्त अपने पुत्र की हत्या पर रो उठा। उसे रोता देखकर उसकी पत्नी ने कहा—"अब रोने से क्या होगा? अपने जातीय भाइयों का नाश करने वाला स्वयं भी नष्ट हो जाता है। अपने ही जब नहीं रहेंगे, तो कौन हमारी रक्षा करेगा?"

अगले दिन प्रियदर्शन ने गंगदत्त को बुलाकर फिर कहा कि "मैं भूखा हूँ, मेंढक तो सभी समाप्त हो गये। अब तू मेरे भोजन का कोई और प्रबन्ध कर।"

गंगदत्त को एक उपाय सूझ गया। उसने कुछ देर विचार करने के बाद कहा—"प्रियदर्शन! यहाँ के मेंढक तो समाप्त हो गये; अब मैं दूसरे कूओं से मेंढकों को बुलाकर तेरे पास लाता हूँ, तू मेरी प्रतीक्षा करना।"

प्रियदर्शन को यह युक्ति समझ आगई। उसने गंगदत्त को कहा—"तू मेरा भाई है, इसलिये मैं तुझे नहीं खाता। यदि तू दूसरे मेंढकों को बुला लायगा तो तू मेरे पिता समान पूज्य हो जायगा।"

गंगदत्त अवसर पाकर कूएँ से निकल गया। प्रियदर्शन प्रतिक्षण उसकी प्रतीक्षा में बैठा रहा। बहुत दिन तक भी जब गंगदत्त वापिस नहीं आया तो सांप ने अपने पड़ोस के बिल में रहने वाली गोह से कहा कि—"तू मेरी सहायता कर। बाहिर जाकर गंगदत्त को खोजना और उसे कहना कि यदि दूसरे मेंढक नहीं आते तो भी वह आजाय। उसके बिना मेरा मन नहीं लगता।"

गोह ने बाहर निकलकर गंगदत्त को खोज लिया। उससे भेंट होने पर वह बोली—"गंगदत्त! तेरा मित्र प्रियदर्शन तेरी राह देख रहा है। चल, उसके मन को धीरज बँधा। वह तेरे बिना बहुत दुःखी है।"

गंगदत्त ने गोह से कहा—"नहीं, मैं अब नहीं जाऊँगा। संसार में भूखे का कोई भरोसा नहीं, ओछे आदमी प्रायः निर्दय हो जाते हैं। प्रियदर्शन को कहना कि गंगदत्त अब वापिस नहीं आयगा।"

गोह वापिस चली गई।

× × ×

यह कहानी सुनाने के बाद बन्दर ने मगरमच्छ से कहा कि मैं भी गंगदत्त की तरह वापिस नहीं जाऊँगा।

मगरमच्छ बोला—"मित्र! यह उचित नहीं है, मैं तेरा सत्कार करके कृतघ्नता का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। यदि तू मेरे साथ नहीं जायगा तो मैं यहीं भूख से प्राण दे दूंगा।"

बन्दर बोला—"मूर्ख! क्या मैं लम्बकर्ण जैसा मूर्ख हूँ, जो स्वयं मौत के मुख में जा पड़ूंगा। वह गधा शेर को देखकर वापिस चला गया था, लेकिन फिर उसके पास आगया। मैं ऐसा अन्धा नहीं हूँ।"

मगर ने पूछा—"लम्बकर्ण कौन था?"

तब बन्दर ने यह कहानी सुनाई—

२.

आज़माए को आज़माना

'जानन्नपि नरो दैवात्प्रकरोति विगर्हितम् ।'

. . . .

सब कुछ जानते हुए भी जो मनुष्य बुरे काम में प्रवृत्त हो जाय, वह मनुष्य नहीं गधा है ।

. . . .

एक घने जङ्गल में करालकेसर नाम का शेर रहता था। उसके साथ धूसरक नाम का गीदड़ भी सदा सेवाकार्य के लिए रहा करता था। शेर को एक बार एक मत्त हाथी से लड़ना पड़ा था, तब से उसके शरीर पर कई घाव हो गये थे। एक टाँग भी इस लड़ाई में टूट गई थी। उसके लिये एक क़दम चलना भी कठिन हो गया था। जङ्गल में पशुओं का शिकार करना उसकी शक्ति से बाहर था। शिकार के बिना पेट नहीं भरता था। शेर और गीदड़ दोनों भूख से व्याकुल थे। एक दिन शेर ने गीदड़ से कहा—"तू किसी शिकार की खोज कर के यहाँ ले आ; मैं पास में आए पशु को मार डालूँगा, फिर हम दोनों भर-पेट खाना खायेंगे।"

गीदड़ शिकार की खोज में पास के गाँव में गया। वहाँ उसने

तालाब के किनारे लम्बकर्ण नाम के गधे को हरी-हरी घास की कोमल कोंपलें खाते देखा। उसके पास जाकर बोला—"मामा! नमस्कार। बड़े दिनों बाद दिखाई दिये हो। इतने दुबले कैसे हो गये?"

गधे ने उत्तर दिया—"भगिनीपुत्र! क्या कहूँ? धोबी बड़ी निर्दयता से मेरी पीठ पर बोझा रख देता है और एक क़दम भी ढीला पड़ने पर लाठियों से मारता है। घास मुट्ठीभर भी नहीं देता। स्वयं मुझे यहाँ आकर मिट्टी-मिली घास के तिनके खाने पड़ते हैं। इसीलिये दुबला होता जा रहा हूँ।"

गीदड़ बोला—"मामा! यही बात है तो मैं तुझे एक जगह ऐसी बतलाता हूँ, जहां मरकत-मणि के समान स्वच्छ हरी घास के मैदान हैं, निर्मल जल का जलाशय भी पास ही है। वहां आओ और हँसते-गाते जीवन व्यतीत करो।"

लम्बकर्ण ने कहा—"बात तो ठीक है भगिनीपुत्र! किन्तु हम देहाती पशु हैं, वन में जङ्गली जानवर मार कर खा जायेंगे। इसीलिये हम वन के हरे मैदानों का उपभोग नहीं कर सकते।"

गीदड़—"मामा! ऐसा न कहो। वहाँ मेरा शासन है। मेरे रहते कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारी तरह कई गधों को मैंने धोबियों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाई है। इस समय भी वहाँ तीन गर्दभ-कन्यायें रहती हैं, जो अब जवान हो चुकी हैं। उन्होंने आते हुए मुझे कहा था कि तुम हमारी सच्ची माँ हो तो गाँव में जाकर हमारे लिये किसी गर्दभपति को लाओ।

इसीलिए तो मैं तुम्हारे पास आया हूँ।"

गीदड़ की बात सुनकर लम्बकर्ण ने गीदड़ के साथ चलने का निश्चय कर लिया। गीदड़ के पीछे-पीछे चलता हुआ वह उसी वन-प्रदेश में आ पहुँचा जहाँ कई दिनों का भूखा शेर भोजन की प्रतीक्षा में बैठा था। शेर के उठते ही लम्बकर्ण ने भागना शुरू कर दिया। उसके भागते-भागते भी शेर ने पंजा लगा दिया। लेकिन लम्बकर्ण शेर के पंजे में नहीं फँसा, भाग ही गया। तब, गीदड़ ने शेर से कहा—

"तुम्हारा पंजा बिल्कुल बेकार हो गया है। गधा भी उसके फन्दे से बच भागता है। क्या इसी बल पर तुम हाथी से लड़ते हो?"

शेर ने ज़रा लज्जित होते हुए उत्तर दिया—"अभी मैंने अपना पंजा तैयार भी नहीं किया था। वह अचानक ही भाग गया। अन्यथा हाथी भी इस पंजे की मार से घायल हुए बिना भाग नहीं सकता।"

गीदड़ बोला—"अच्छा! तो अब एक बार और यत्न करके उसे तुम्हारे पास लाता हूँ। यह प्रहार खाली न जाये।"

शेर—"जो गधा मुझे अपनी आँखों देख कर भागा है, वह अब कैसे आयगा? किसी और पर घात लगाओ।"

गीदड़—"इन बातों में तुम दख़ल मत दो। तुम तो केवल तैयार होकर बैठ रहो।"

गीदड़ ने देखा कि गधा उसी स्थान पर फिर घास चर रहा है।

गीदड़ को देखकर गधे ने कहा—"भगिनीसुत ! तू भी मुझे खूब अच्छी जगह ले गया। एक क्षण और हो जाता तो जीवन से हाथ धोना पड़ता। भला, वह कौन सा जानवर था जो मुझे देख कर उठा था, और जिसका वज्रसमान हाथ मेरी पीठ पर पड़ा था?"

तब हँसते हुए गीदड़ ने कहा—"मामा ! तुम भी विचित्र हो, गर्दभी तुम्हें देख कर आलिङ्गन करने उठी और तुम वहाँ से भाग आये। उसने तो तुम से प्रेम करने को हाथ उठाया था। वह तुम्हारे बिना जीवित नहीं रहेगी। भूखी-प्यासी मर जायगी। वह कहती है, यदि लम्बकर्ण मेरा पति नहीं होगा तो मैं आग में कूद पड़ूंगी।

इसलिए अब उसे अधिक मत सताओ। अन्यथा स्त्री-हत्या का पाप तुम्हारे सिर लगेगा। चलो, मेरे साथ चलो।"

गीदड़ की बात सुन कर गधा उसके साथ फिर जङ्गल की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचते ही शेर उस पर टूट पड़ा। उसे मार कर शेर तालाब में स्नान करने गया। गीदड़ रखवाली करता रहा। शेर को ज़रा देर हो गई। भूख से व्याकुल गीदड़ ने गधे के कान और दिल के हिस्से काट कर खा लिये।

शेर जब भजन-पूजन से वापस आया तो उसने देखा कि गधे के कान नहीं थे, और दिल भी निकला हुआ था। क्रोधित होकर उसने गीदड़ से कहा—"पापी ! तूने इसके कान और दिल खा

कर इसे जूठा क्यों किया ?"

गीदड़ बोला—"स्वामी ! ऐसा न कहो। इसके कान और दिल थे ही नहीं, तभी तो यह एक बार जाकर भी वापस आ गया था।"

शेर को गीदड़ की बात पर विश्वास हो गया। दोनों ने बाँट कर गधे का भोजन किया।

× × ×

कहानी कहने के बाद बन्दर ने मगर से कहा कि—"मूर्ख ! तू ने भी मेरे साथ छल किया था। किन्तु दंभ के कारण तेरे मुख से सच्ची बात निकल गई। दंभ से प्रेरित होकर जो सच बोलता है, वह उसी तरह पदच्युत हो जाता है जिस तरह युधिष्ठिर नाम के कुम्हार को राजा ने पदच्युत कर दिया था।"

मगर ने पूछा—"युधिष्ठिर कौन था ?"

तब बन्दर ने युधिष्ठिर की कहानी इस प्रकार सुनाई--

३.

समय का राग कुसमय की टर्र

"स्वार्थमुत्सृज्य यो दंभी सत्यं ब्रूते सुमन्दधीः।
स स्वर्थाद्भ्रश्यते नूनं युधिष्ठिर इवापरः"

. . . .

अपने प्रयोजन से या केवल दंभ से सत्य
बोलने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

. . . .

युधिष्ठिर नाम का कुम्हार एक बार टूटे हुए घड़े के नुकीले ठीकरे से टकरा कर गिर गया। गिरते ही वह ठीकरा उसके माथे में घुस गया। खून बहने लगा। घाव गहरा था, दवा-दारू से भी ठीक न हुआ। घाव बढ़ता ही गया। कई महीने ठीक होने में लग गये। ठीक होने पर भी उसका निशान माथे पर रह गया।

कुछ दिन बाद अपने देश में दुर्भिक्ष पड़ने पर वह एक दूसरे देश में चला गया। वहाँ वह राजा के सेवकों में भर्ती हो गया। राजा ने एक दिन उसके माथे पर घाव के निशान देखे तो समझा कि यह अवश्य कोई वीर पुरुष होगा, जो लड़ाई में शत्रु का सामने से मुक़ाबिला करते हुए घायल हो गया होगा। यह समझ उसने

उसे अपनी सेना में ऊँचा पद दे दिया। राजा के पुत्र व अन्य सेनापति इस सम्मान को देखकर जलते थे, लेकिन राजभय से कुछ कह नहीं सकते थे।

कुछ दिन बाद उस राजा को युद्ध-भूमि में जाना पड़ा। वहाँ जब लड़ाई की तैयारियाँ हो रही थीं, हाथियों पर हौदे डाले जा रहे थे, घोड़ों पर काठियां चढ़ाई जा रही थीं, युद्ध का बिगुल सैनिकों को युद्ध-भूमि के लिये तैयार होने का संदेश दे रहा था—राजा ने प्रसंगवश युधिष्ठिर कुंभकार से पूछा—"वीर! तेरे माथे पर यह गहरा घाव किस संग्राम में कौन से शत्रु का सामना करते हुए लगा था?"

कुंभकार ने सोचा कि अब राजा और उसमें इतनी निकटता हो चुकी है कि राजा सचाई जानने के बाद भी उसे मानता रहेगा। यह सोच उसने सच बात कह दी कि—"यह घाव हथियार का घाव नहीं है। मैं तो कुंभकार हूं। एक दिन शराब पीकर लड़खड़ाता हुआ जब मैं घर से निकला तो घर में बिखरे पड़े घड़ों के ठीकरों से टकरा कर गिर पड़ा। एक नुकीला ठीकरा माथे में गड़ गया। यह निशान उसका ही है।"

राजा यह बात सुनकर बहुत लज्जित हुआ, और क्रोध से कांपते हुए बोला—"तूने मुझे ठगकर इतना ऊँचा पद पालिया। अभी मेरे राज्य से निकल जा।" कुंभकार ने बहुत अनुनय विनय की कि—"मैं युद्ध के मैदान में तुम्हारे लिये प्राण दे दूंगा, मेरा युद्ध-कौशल तो देख लो।" किन्तु, राजा ने एक बात न सुनी।

उसने कहा कि भले ही तुम सर्वगुणसम्पन्न हो, शूर हो, पराक्रमी हो, किन्तु हो तो कुंभकार ही। जिस कुल में तेरा जन्म हुआ है वह शूरवीरों का नहीं है। तेरी अवस्था उस गीदड़ की तरह है, जो शेरों के बच्चों में पलकर भी हाथी से लड़ने को तैयार न हुआ था"।

युधिष्ठिर कुंभकार ने पूछा—"यह किस तरह ?"

तब राजा ने सिंह-शृंगालपुत्र की कहानी इस प्रकार सुनाई—

४.

गीदड़ गीदड़ ही रहता है

'यस्मिन्नकुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हयन्ते'

. . . .

गीदड़ का बच्चा शेरनी का दूध पीकर भी गीदड़ ही रहता है।

. . . .

एक जंगल में शेर-शेरनी का युगल रहता था। शेरनी के दो बच्चे हुए। शेर प्रतिदिन हिरणों को मारकर शेरनी के लिये लाता था। दोनों मिलकर पेट भरते थे। एक दिन जंगल में बहुत घूमने के बाद भी शाम होने तक शेर के हाथ कोई शिकार न आया। खाली हाथ घर वापिस आ रहा था तो उसे रास्ते में गीदड़ का बच्चा मिला। बच्चे को देखकर उसके मन में दया आ गई; उसे जीवित ही अपने मुख में सुरक्षा-पूर्वक लेकर वह घर आ गया और शेरनी के सामने उसे रखते हुए बोला—"प्रिये! आज भोजन तो कुछ मिला नहीं। रास्ते में गीदड़ का यह बच्चा खेल रहा था। उसे जीवित ही ले आया हूँ। तुझे भूख लगी है तो इसे खाकर पेट भरले। कल दूसरा शिकार लाऊँगा।"

शेरनी बोली—"प्रिय! जिसे तुमने बालक जानकर नहीं मारा, उसे मारकर मैं कैसे पेट भर सकती हूँ! मैं भी इसे बालक मानकर ही पाल लूँगी। समझ लूँगी कि यह मेरा तीसरा बच्चा है।" गीदड़ का बच्चा भी शेरनी का दूध पीकर खूब पुष्ट हो गया। और शेर के अन्य दो बच्चों के साथ खेलने लगा। शेर-शेरनी तीनों को प्रेम से एक समान रखते थे।

कुछ दिन बाद उस वन में एक मत्त हाथी आ गया। उसे देख कर शेर के दोनों बच्चे हाथी पर गुर्राते हुए उसकी ओर लपके। गीदड़ के बच्चे ने दोनों को ऐसा करने से मना करते हुए कहा— "यह हमारा कुलशत्रु है। उसके सामने नहीं जाना चाहिये। शत्रु से दूर रहना ही ठीक है।" यह कहकर वह घर की ओर भागा। शेर के बच्चे भी निरुत्साहित होकर पीछे लौट आये।

घर पहुँच कर शेर के दोनों बच्चों ने माँ-बाप से गीदड़ के बच्चे के भागने की शिकायत करते हुए उसकी कायरता का उपहास किया। गीदड़ का बच्चा इस उपहास से बहुत क्रोधित हो गया। लाल-लाल आंखें करके और होठों को फड़फड़ाते हुए वह उन दोनों को जली-कटी सुनाने लगा। तब, शेरनी ने उसे एकान्त में बुलाकर कहा कि—"इतना प्रलाप करना ठीक नहीं, वे तो तेरे छोटे भाई हैं, उनकी बात को टाल देना ही अच्छा है।"

गीदड़ का बच्चा शेरनी के समझाने-बुझाने पर और भी भड़क उठा और बोला—"मैं बहादुरी में, विद्या में या कौशल में उनसे किस बात में कम हूँ, जो वे मेरी हँसी उड़ाते हैं; मैं उन्हें इसका

मज़ा चखाऊँगा, उन्हें मार डालूँगा।"

यह सुनकर शेरनी ने हँसते-हँसते कहा—"तू बहादुर भी है, विद्वान् भी है, सुन्दर भी है, लेकिन जिस कुल में तेरा जन्म हुआ है उसमें हाथी नहीं मारे जाते। समय आ गया है कि तुझ से सच बात कह ही देनी चाहिये। तू वास्तव में गीदड़ का बच्चा है। मैंने तुझे अपना दूध देकर पाला है। अब इससे पहले कि तेरे भाई इस सचाई को जानें, तू यहाँ से भागकर अपने स्वजातियों से मिल जा। अन्यथा वह तुझे जीता नहीं छोड़ेंगे।"

यह सुनकर वह डर से काँपता हुआ अपने गीदड़ दल में आ मिला।

× × ×

इसी तरह राजा ने कुम्भकार से कहा कि—तू भी, इससे पहले कि अन्य राजपुत्र तेरे कुम्हार होने का भेद जानें, और तुझे मार डालें, तू यहाँ से भागकर कुम्हारों में मिल जा।"

❀ ❀ ❀

कहानी सुनाने के बाद बन्दर ने मगरमच्छ से कहा—"धूर्त्त! तूने स्त्री के कहने पर मेरे साथ विश्वासघात किया। स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिये। उनके लिये जिसने सब कुछ परित्याग दिया था उसे भी वह छोड़ गई थी।"

मगर ने पूछा—"कैसे?"

बन्दर ने इसकी पुष्टि में लंगड़े और ब्राह्मणी की यह प्रेम-कथा सुनाई—

५.

स्त्री का विश्वास

"... कः स्त्रीणां विश्वसेन्नरः"

. . . .

"अतिशय कामिनी स्त्री का विश्वास न करे"

. . . .

एक स्थान पर एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी बड़े प्रेम से रहते थे। किन्तु ब्राह्मणी का व्यवहार ब्राह्मण के कुटुम्बियों से अच्छा नहीं था। परिवार में कलह रहता था। प्रतिदिन के कलह से मुक्ति पाने के लिये ब्राह्मण ने मां-बाप, भाई-बहिन का साथ छोड़कर पत्नी को लेकर दूर देश में जाकर अकेले घर बसाकर रहने का निश्चय किया।

यात्रा लंबी थी। जंगल में पहुँचने पर ब्राह्मणी को बहुत प्यास लगी। ब्राह्मण पानी लेने गया। पानी दूर था, देर लग गई। पानी लेकर वापिस आया तो ब्राह्मणी को मरी पाया। ब्राह्मण बहुत व्याकुल होकर भगवान से प्रार्थना करने लगा। उसी समय आकाशवाणी हुई कि—"ब्राह्मण! यदि तू अपने प्राणों का आधा भाग इसे देना स्वीकार करे तो ब्राह्मणी जीवित हो जायगी।"

ब्राह्मण ने यह स्वीकार कर लिया। ब्राह्मणी फिर जीवित हो गई। दोनों ने यात्रा शुरू करदी।

वहाँ से बहुत दूर एक नगर था। नगर के बाग़ में पहुँचकर ब्राह्मण ने कहा—"प्रिये! तुम यहीं ठहरो, मैं अभी भोजन लेकर आता हूँ।" ब्राह्मण के जाने के बाद ब्राह्मणी अकेली रह गई। उसी समय बाग़ के कूएं पर एक लंगड़ा, किन्तु सुन्दर जवान रहट चला रहा था। ब्राह्मणी उससे हँसकर बोली। वह भी हँसकर बोला। दोनों एक दूसरे को चाहने लगे। दोनों ने जीवन भर एक साथ रहने का प्रण कर लिया।

ब्राह्मण जब भोजन लेकर नगर से लौटा तो ब्राह्मणी ने कहा—"यह लँगड़ा व्यक्ति भी भूखा है, इसे भी अपने हिस्से में से दे दो।" जब वहां से आगे प्रस्थान करने लगे तो ब्राह्मणी ने ब्राह्मण से अनुरोध किया कि—"इस लँगड़े व्यक्ति को भी साथ ले लो। रास्ता अच्छा कट जायगा। तुम जब कहीं जाते हो तो मैं अकेली रह जाती हूँ। बात करने को भी कोई नहीं होता। इसके साथ रहने से कोई बात करने वाला तो रहेगा।"

ब्राह्मण ने कहा—"हमें अपना भार उठाना ही कठिन हो रहा है, इस लँगड़े का भार कैसे उठायेंगे?"

ब्राह्मणी ने कहा—"हम इसे पिटारी में रख लेंगे।"

ब्राह्मण को पत्नी की बात माननी पड़ी।

कुछ दूर जाकर ब्राह्मणी और लँगड़े ने मिलकर ब्राह्मण को धोखे से कूएँ में धकेल दिया। उसे मरा समझ कर वे दोनों आगे बढ़े।

नगर की सीमा पर राज्य-कर वसूल करने की चौकी थी। राजपुरुषों ने ब्राह्मणी की पटारी को ज़बर्दस्ती उसके हाथ से छीन कर खोला तो उस में वह लँगड़ा छिपा था। यह बात राज-दरबार तक पहुँची। राजा के पूछने पर ब्राह्मणी ने कहा—"यह मेरा पति है। अपने बन्धु-बान्धुवों से परेशान होकर हमने देश छोड़ दिया है।" राजा ने उसे अपने देश में बसने की आज्ञा दे दी।

कुछ दिन बाद, किसी साधु के हाथों कूएँ से निकाले जाने के उपरान्त ब्राह्मण भी उसी राज्य में पहुँच गया। ब्राह्मणी ने जब उसे वहाँ देखा तो राजा से कहा कि यह मेरे पति का पुराना वैरी है, इसे यहाँ से निकाल दिया जाये, या मरवा दिया जाये। राजा ने उसके वध की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मण ने आज्ञा सुनकर कहा—"देव! इस स्त्री ने मेरा कुछ लिया हुआ है। वह मुझे दिलवा दिया जाये।" राजा ने ब्राह्मणी को कहा—"देवी! तूने इसका जो कुछ लिया हुआ है, सब दे दे।" ब्राह्मणी बोली—"मैंने कुछ भी नहीं लिया।" ब्राह्मण ने याद दिलाया कि—"तूने मेरे प्राणों का आधा भाग लिया हुआ है। सभी देवता इसके साक्षी हैं।" ब्राह्मणी ने देवताओं के भय से वह भाग वापिस करने का वचन दे दिया। किन्तु वचन देने के साथ ही वह मर गई। ब्राह्मण ने सारा वृत्तान्त राजा को सुना दिया।

× × ×

बन्दर ने फिर मगर से कहा—"तू भी स्त्री का उसी तरह दास बन गया है जिस तरह वररुचि था।"

मगर के पूछने पर बन्दर ने वररुचि की कहानी सुनाई—

६.

स्त्री-भक्त राजा

"न किं दद्यान्न किं कुर्यात् स्त्रीभिरभ्यर्थितो नरः"

. . . .

स्त्री की दासता मनुष्य को विचारान्ध बना देती है,
उसके आग्रह का पालन न करे

. . . .

एक राज्य में अतुलबल पराक्रमी राजा नन्द राज्य करता था। उसकी वीरता चारों दिशाओं में प्रसिद्ध थी। आसपास के सब राजा उसकी वन्दना करते थे। उसका राज्य समुद्र-तट तक फैला हुआ था। उसका मन्त्री वररुचि भी बड़ा विद्वान् और सब शास्त्रों में पारंगत था। उसकी पत्नी का स्वभाव बड़ा तीखा था। एक दिन वह प्रणय-कलह में ही ऐसी रूठ गई कि अनेक प्रकार से मनाने पर भी न मानी। तब, वररुचि ने उससे पूछा—"प्रिये! तेरी प्रसन्नता के लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। जो तू आदेश करेगी, वही करूँगा।" पत्नी ने कहा—"अच्छी बात है। मेरा आदेश है कि तू अपना सिर मुंडाकर मेरे पैरों पर गिरकर मुझे मना, तब मैं मानूंगी।" वररुचि ने वैसा ही किया। तब वह प्रसन्न हो गई।

उसी दिन राजा नन्द की स्त्री भी रूठ गई। नन्द ने भी कहा—"प्रिये ! तेरी अप्रसन्नता मेरी मृत्यु है। तेरी प्रसन्नता के लिये मैं सब कुछ करने के लिये तैयार हूँ। तू आदेश कर, मैं उसका पालन करूंगा।" नन्दपत्नी बोली—"मैं चाहती हूँ कि तेरे मुख में लगाम डालकर तुझपर सवार हो जाऊँ, और तू घोड़े की तरह हिनहिनाता हुआ दौड़े। अपनी इस इच्छा के पूरी होने पर ही मैं प्रसन्न होऊँगी।" राजा ने भी उसकी इच्छा पूरी करदी।

दूसरे दिन सुबह राज-दरबार में जब वररुचि आया तो राजा ने पूछा—"मन्त्री! किस पुण्यकाल में तूने अपना सिर मुंडाया है ?"

वररुचि ने उत्तर दिया—"राजन् ! मैंने उस पुण्य काल में सिर मुँडाया है, जिस काल में पुरुष मुख में लगाम डालकर हिन-हिनाते हुए दौड़ते हैं।"

राजा यह सुनकर बड़ा लज्जित हुआ।

× × ×

बन्दर ने यह कथा सुनाकर मगर से कहा—"मगर-राज ! तुम भी स्त्री के दास बनकर वररुचि के समान अन्धे बन गये हो। उसके कहने पर ही तुम मुझे मारने चले थे, लेकिन वाचाल होने से तुमने अपने मन की बात कहदी। वाचाल होने से सारस मारे जाते हैं। बगुला वाचाल नहीं है, मौन रहता है, इसीलिये बच जाता है। मौन से सभी काम सिद्ध होते हैं। वाणी का असंयम जीव-मात्र के लिये घातक है। इसी दोष के कारण शेर की खाल पहनने के बाद भी गधा अपनी जान न बचा सका, मारा गया।

मगर ने पूछा—"किस तरह ?"

बन्दर ने तब वाचाल गधे की यह कहानी सुनाई—

७.

वाचाल गधा

'मौनं सर्वार्थसाधनम्'

. . .

वाचालता विनाशक है, मौन
में बड़े गुण हैं

. . .

एक शहर में शुद्धपट नाम का धोबी रहता था। उसके पास एक गधा भी था। घास न मिलने से वह बहुत दुबला हो गया। धोबी ने तब एक उपाय सोचा। कुछ दिन पहले जंगल में घूमते-घूमते उसे एक मरा हुआ शेर मिला था, उसकी खाल उसके पास थी। उसने सोचा यह खाल गधे को ओढ़ा कर खेत में भेज दूंगा, जिससे खेत के रखवाले इसे शेर समझकर डरेंगे और इसे मार कर भगाने की कोशिश नहीं करेंगे।

धोबी की चाल चल गई। हर रात वह गधे को शेर की खाल पहना कर खेत में भेज देता था। गधा भी रात भर खाने के बाद घर आ जाता था।

लेकिन एक दिन यह पोल खुल गई। गधे ने एक गधी की

आवाज़ सुन कर खुद भी अरड़ाना शुरू कर दिया। रखवाले शेर की खाल ओढ़े गधे पर टूट पड़े, और उसे इतना मारा कि बिचारा मर ही गया। उसकी वाचालता ने उसकी जान लेली।

× × ×

बन्दर मगर को यह कहानी कह ही रहा था कि मगर के एक पड़ोसी ने वहाँ आकर मगर को यह ख़बर दी कि उसकी स्त्री भूखी-प्यासी बैठी उसके आने की राह देखती-देखती मर गई। मगरमच्छ यह सुन कर व्याकुल हो गया और बन्दर से बोला—"मित्र क्षमा करना, मैं तो अब स्त्री-वियोग से भी दुःखी हूं।"

बन्दर ने हँसते हुए कहा—"यह तो मैं पहले ही जानता था कि तू स्त्री का दास है। अब उसका प्रमाण भी मिल गया। मूर्ख! ऐसी दुष्ट स्त्री की मृत्यु पर तो उत्सव मनाना चाहिये, दुःख नहीं। ऐसी स्त्रियाँ पुरुष के लिये विष समान होती हैं। बाहिर से वह जितनी अमृत समान मीठी लगती हैं, अन्दर से उतनी ही विष समान कड़वी होती हैं।"

मगर ने कहा—"मित्र! ऐसा ही होगा, किन्तु अब क्या करूँ? मैं तो दोनों ओर से जाता रहा। उधर पत्नी का वियोग हुआ, घर उजड़ गया; इधर तेरे जैसा मित्र छूट गया। यह भी दैवसंयोग की बात है। मेरी अवस्था उस किसान-पत्नी की तरह हो गई है जो पति से भी छूटी और धन से भी वंचित कर दी गई थी।"

बन्दर ने पूछा— "वह कैसे?"

तब मगर ने गीदड़ी और किसान-पत्नी की यह कथा सुनाई—

८.

न घर का न घाट का

'विचित्रचरिताः स्त्रियः'

. . . .

स्त्रियों का चरित्र बड़ा अजीब होता है। स्वजनों को छोड़कर परकीयों के पास जाने वाली स्त्रियाँ परकीयों से भी ठगी जाती हैं।

. . . .

एक स्थान पर किसान पति-पत्नी रहते थे। किसान वृद्ध था, पत्नी जवान। अवस्था भेद से पत्नी का चरित्र दूषित हो गया था। उसके चरित्रहीन होने की बात गाँव भर में फैल गई थी।

एक दिन उसे एकान्त में पाकर एक जवान ठग ने कहा—"सुन्दरी! मैं भी विधुर हूँ, और वृद्ध की पत्नी होने के कारण तू भी विधवा समान है। चलो, हम यहाँ से दूर भाग कर प्रेम से रहें।" किसान-पत्नी को यह बात पसन्द आई। वह दूसरे ही दिन घर से सारा धन-आभूषण लेकर आ गई और दोनों दक्षिण दिशा की ओर वेग से चल पड़े। अभी दो कोस ही गये थे कि नदी आ गई।

वहाँ दोनों ठहर गये। जवान ठग के मन में पाप था। वह

किसान-पत्नी के धन पर हाथ साफ़ करना चाहता था। उसने नदी को पार करने के लिये यह सुझाव रखा कि पहले वह सम्पूर्ण धन-ज़ेवर की गठरी बाँध कर दूसरे किनारे रख आयेगा, फिर आकर सुन्दरी को सहारा देते हुए पार पहुँचा देगा।" किसान-पत्नी मूर्ख थी, वह यह बात मान गई। धन-आभूषणों के साथ वह पत्नी के क़ीमती कपड़े भी ले गया। किसान-पत्नी निपट नग्न रह गई।

इतने में वहाँ एक गीदड़ी आई। उसके मुख में माँस का टुकड़ा था। वहाँ आकर उसने देखा कि नदी के किनारे एक मछली बैठी है। उसे देखकर वह मांस के टुकड़ों को वहीं छोड़ मछली मारने किनारे तक गई। इसी बीच एक गृद्ध आकाश से उतरा और झपट कर मांस का टुकड़ा दबोच कर ले गया। उधर मछली भी गीदड़ी को आता देख नदी में कूद पड़ी। गीदड़ी दोनों ओर से खाली हाथ हो गई। मांस का टुकड़ा भी गया और मछली भी गई। उसे देख नग्न बैठी किसानकन्या ने कहा—"गीदड़ी! गृद्ध तेरा मांस ले गया और मछली पानी में कूद गई, अब आकाश की ओर क्या देख रही है?" गीदड़ी ने भी प्रत्युत्तर देने में शीघ्रता की। वह बोली—"तेरा भी तो यही हाल है। न तेरा पति तेरा अपना रहा और न ही वह सुन्दर युवक तेरा बना। वह तेरा धन लेकर चला जा रहा है।"

× × ×

मगर यह कहानी सुना ही रहा था कि एक दूसरे मगर ने आकर सूचना दी कि "मित्र! तेरे घर पर भी दूसरे मगरमच्छ ने

अधिकार कर लिया है ।" यह सुनकर मगर और भी चिन्तित हो गया । उसके चारों ओर विपत्तियों के बादल उमड़ रहे थे । उन्हें दूर करने का उपाय पूछने के लिये वह बन्दर से बोला—"मित्र ! मुझे बता कि साम-दाम-भेद आदि में से किस उपाय से अपने घर पर फिर अधिकार करूँ ।"

बन्दर—"कृतघ्न ! मैं तुझे कोई उपाय नहीं बतलाऊँगा । अब मुझे मित्र भी मत कह । तेरा विनाश काल आ गया है । सज्जनों के वचन पर जो नहीं चलता, उसका विनाश अवश्य होता है, जैसे घंटोष्ट्र का हुआ था ।"

मगर ने पूछा—"कैसे ?"

तब बन्दर ने यह कहानी सुनाई—

६.

घमंड का सिर नीचा

सतां वचनमादिष्टं मदेन न करोति यः।
स विनाशमवाप्नोति घंटोष्ट्र इव सत्वरम् ॥

. . . .

सज्जन की सलाह न मानने वाला और दूसरों से विशेष बनने करने का यत्न करने वाला मारा जाता है

. . . .

एक गांव में उज्वलुक नाम का बढ़ई रहता था। वह बहुत ग़रीब था। ग़रीबी से तंग आकर वह गांव छोड़कर दूसरे गांव के लिये चल पड़ा। रास्ते में घना जंगल पड़ता था। वहां उसने देखा कि एक ऊंटनी प्रसवपीड़ा से तड़फड़ा रही है। ऊँटनी ने जब बच्चा दिया तो वह ऊँट के बच्चे और ऊँटनी को लेकर अपने घर आ गया। वहां घर के बाहर ऊँटनी को खूंटी से बांधकर वह उसके खाने के लिये पत्तों-भरी शाखायें काटने वन में गया। ऊँटनी ने हरी-हरी कोमल कोंपलें खाईं। बहुत दिन इसी तरह हरे-हरे पत्ते खाकर ऊंटनी स्वस्थ और पुष्ट हो गई। ऊँट का बच्चा भी

बढ़कर जवान हो गया। बढ़ई ने उसके गले में एक घंटा बांध दिया, जिससे वह कहीं खोया न जाय। दूर से ही उसकी आवाज़ सुनकर बढ़ई उसे घर लिवा लाता था। ऊँटनी के दूध से बढ़ई के बाल-बच्चे भी पलते थे। ऊँट भार ढोने के भी काम आने लगा।

उस ऊँट-ऊँटनी से ही उसका व्यापार चलता था। यह देख उसने एक धनिक से कुछ रुपया उधार लिया और गुर्जर देश में जाकर वहां से एक और ऊँटनी ले आया। कुछ दिनों में उसके पास अनेक ऊँट-ऊँटनियां हो गईं। उनके लिये रखवाला भी रख लिया गया। बढ़ई का व्यापार चमक उठा। घर में दूध की नदियाँ बहने लगीं।

शेष सब तो ठीक था—किन्तु जिस ऊँट के गले में घंटा बंधा था, वह बहुत गर्वित हो गया था। वह अपने को दूसरों से विशेष समझता था। सब ऊँट वन में पत्ते खाने को जाते तो वह सबको छोड़कर अकेला ही जंगल में घूमा करता था।

उसके घंटे की आवाज़ से शेर को यह पता लग जाता था कि ऊँट किधर है। सबने उसे मना किया कि वह गले से घंटा उतार दे, लेकिन वह नहीं माना।

एक दिन जब सब ऊँट वन में पत्ते खाकर तालाब से पानी पीने के बाद गांव की ओर वापिस आ रहे थे, तब वह सब को छोड़कर जंगल की सैर करने अकेला चल दिया। शेर ने भी घंटे की आवाज़ सुनकर उसका पीछा किया। और जब वह पास

आया तो उस पर झपट कर उसे मार दिया ।

× × ×

बन्दर ने कहा, "तभी मैंने कहा था कि सज्जनों की बात अनसुनी करके जो अपनी ही करता है वह विनाश को निमंत्रण देता है ।"

मगरमच्छ बोला—"तभी तो मैं तुझसे पूछता हूँ। तू सज्जन है, साधु है; किन्तु सच्चा साधु तो वही है जो अपकार करने वालों के साथ भी साधुता करे, कृतघ्नों को भी सच्ची राह दिखलाये। उपकारियों के साथ तो सभी साधु होते हैं।"

यह सुनकर बन्दर ने कहा—"तब मैं तुझे यही उपदेश देता हूँ कि तू जाकर उस मगर से, जिसने तेरे घर पर अनुचित अधिकार कर लिया है, युद्ध कर। नीति कहती है कि शत्रु बली है तो भेद-नीति से, नीच है तो दाम से, और समशक्ति है तो पराक्रम से उस पर विजय पाये।"

मगर ने पूछा—"यह कैसे ?"

तब, बन्दर ने गीदड़-शेर और बाघ की यह कहानी सुनाई—

१०.

राजनीतिज्ञ गीदड़

उत्तमं प्रणिपातेन शूरं भेदेन योजयेत् ।
नीचमल्पप्रदानेन समशक्तिं पराक्रमैः ॥

. . . .

उत्कृष्ट शत्रु को विनय से, बहादुर को भेद से, नीच को दान द्वारा और समशक्ति को पराक्रम से वश में लाना चाहिये ।

. . . .

एक जङ्गल में महाचतुर नाम का गीदड़ रहता था। उसकी दृष्टि में एक दिन अपनी मौत आप मरा हुआ हाथी पड़ गया। गीदड़ ने उसकी खाल में दाँत गड़ाने की बहुत कोशिश की, लेकिन कहीं से भी उसकी खाल उधेड़ने में उसे सफलता नहीं मिली। उसी समय वहाँ एक शेर आया। शेर को आता देखकर वह साष्टांग प्रणाम करने के बाद हाथ जोड़कर बोला—"स्वामी! मैं आपका दास हूँ। आपके लिये ही इस मृत हाथी की रखवाली कर रहा हूँ। आप अब इसका यथेष्ट भोजन कीजिये।"

शेर ने कहा—"गीदड़! मैं किसी और के हाथों मरे जीव का भोजन नहीं करता। भूखे रह कर भी मैं अपने इस धर्म का पालन

करता हूँ। अतः तू ही इसका आस्वादन कर। मैंने तुझे भेंट में दे दिया।"

शेर के जाने के बाद वहाँ एक बाघ आया। गीदड़ ने सोचा : 'एक मुसीबत को तो हाथ जोड़ कर टाला था, इसे कैसे टालूँ? इसके साथ भेद-नीति का ही प्रयोग करना चाहिए। जहाँ साम-दाम की नीति न चले वहाँ भेद-नीति ही अपना काम करती है। भेद-नीति ही ऐसी प्रबल है कि मोतियों को भी माला में बाँध देती है।' यह सोचकर वह बाघ के सामने ऊँची गर्दन करके गया और बोला—

"मामा! इस हाथी पर दाँत न गड़ाना। इसे शेर ने मारा है। वह अभी नदी पर स्नान करने गया है और मुझे रखवाली के लिये छोड़ गया है। वह यह भी कह गया है कि यदि कोई बाघ आए तो उसे बता दूँ, जिससे वह सारा जङ्गल बाघों से खाली कर दे।"

गीदड़ की बात सुनकर बाघ ने कहा—"मित्र! मेरी जीवन-रक्षा कर, प्राणों की भिक्षा दे। शेर से मेरे आने की चर्चा न करना।" यह कह कर वह बाघ वहाँ से भाग गया।

बाघ के जाने के बाद वहाँ एक चीता आया। गीदड़ ने सोचा—'चीते के दाँत तीखे होते हैं, इससे हाथी की खाल उधड़वा लेता हूँ।' यह सोच वह उसके पास जाकर बोला—"भगिनीसुत! क्या बात है, बहुत दिनों में दिखाई दिये हो। कुछ भूख से सताए मालूम होते हो। आओ, मेरा आतिथ्य स्वीकार करो। देखो,

यह हाथी शेर ने मारा है, मैं इसका रखवाला हूँ। जब तक शेर नहीं आता, तब तक इसका माँस खाकर जल्दी से भाग जाओ। मैं उसके आने की ख़बर दूर से ही दे दूँगा।"

गीदड़ थोड़ी दूर पर खड़ा हो गया और चीता हाथी की खाल उधेड़ने में लग गया। जैसे ही चीते ने एक दो जगहों से खाल उधेड़ी, वैसे ही गीदड़ चिल्ला पड़ा: "शेर आ रहा है, भाग जा।" चीता यह सुनकर भाग खड़ा हुआ।

उसके जाने के बाद गीदड़ ने उधड़ी जगहों से माँस खाना शुरू कर दिया। लेकिन अभी एक दो ग्रास ही खाए थे कि एक गीदड़ आ गया। गीदड़ तो उसका समशक्ति ही था। इसलिये वह उस पर टूट पड़ा और उसे दूर तक भगा आया। इसके बाद बहुत दिनों तक वह उस हाथी का मांस खाता रहा।

× × ×

यह कहानी सुनाकर बन्दर ने कहा—"तभी तुझे भी कहता हूँ कि स्वजातीय से युद्ध करके अभी निपट ले, नहीं तो उसकी जड़ जम जाएगी। वही तुझे नष्ट कर देगा। स्वजातियों का यही दोष है कि वही विरोध करते हैं, जैसे कुत्तों ने किया था।"

मगर ने कहा—"कैसे?"

बन्दर ने तब कुत्ते की यह कहानी सुनाई—

११.

कुत्ते का वैरी कुत्ता

'एको दोषो विदेशस्य स्वजातिर्यद्विरुध्यते'

. . . .

विदेश का यही दोष है कि वहाँ स्वजातीय
ही विरोध में खड़े हो जाते हैं।

. . . .

एक गाँव में चित्रांग नाम का कुत्ता रहता था। वहां दुर्भिक्ष पड़ गया। अन्न के अभाव में कई कुत्तों का वंशनाश हो गया। चित्रांग ने भी दुर्भिक्ष से बचने के लिये दूसरे गाँव की राह ली। वहाँ पहुँच कर उसने एक घर में चोरी से जाकर भरपेट खाना खा लिया। जिसके घर खाना खाया था उसने तो कुछ नहीं कहा, लेकिन घर से बाहर निकला तो आसपास के सब कुत्तों ने उसे घेर लिया। भयङ्कर लड़ाई हुई। चित्रांग के शरीर पर कई घाव लग गये। चित्रांग ने सोचा—'इससे तो अपना गाँव ही अच्छा है, जहाँ केवल दुर्भिक्ष है, जान के दुश्मन कुत्ते तो नहीं हैं।'

यह सोच कर वह वापिस आ गया। अपने गाँव आने पर उससे सब कुत्तों ने पूछा—"चित्रांग! दूसरे गाँव की बात सुना।

वह गाँव कैसा है ? वहाँ के लोग कैसे हैं ? वहाँ खाने-पीने की चीज़ें कैसी हैं ?"

चित्रांग ने उत्तर दिया—"मित्रो, उस गाँव में खाने-पीने की चीज़ें तो बहुत अच्छी हैं, और गृह-पत्नियाँ भी नरम स्वभाव की हैं; किन्तु दूसरे गाँव में एक ही दोष है, अपनी जाति के ही कुत्ते बड़े खूंखार हैं।"

× × ×

बन्दर का उपदेश सुनकर मगरमच्छ ने मन ही मन निश्चय किया कि वह अपने घर पर स्वामित्व जमाने वाले मगरमच्छ से युद्ध करेगा। अन्त में यही हुआ। युद्ध में मगरमच्छ ने उसे मार दिया और देर तक सुखपूर्वक उस घर में रहता रहा।

॥ चतुर्थ तंत्र समाप्त ॥

पञ्चम तन्त्र—

अपरीक्षितकारकम्

इस तन्त्र में—
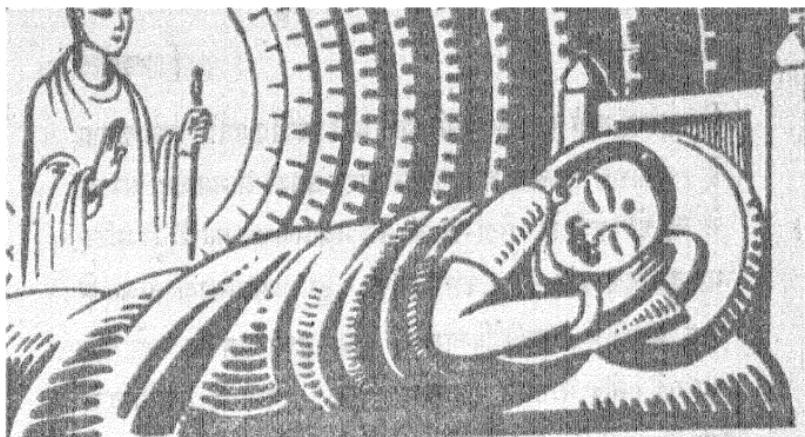
दक्षिण प्रदेश के एक प्रसिद्ध नगर पाटलिपुत्र में मणिभद्र नाम का एक धनिक महाजन रहता था। लोक-सेवा और धर्म-कार्यों में रत रहने से उसके धन-संचय में कुछ कमी आ गई, समाज में मान घट गया। इससे मणिभद्र को बहुत दुःख हुआ। दिन-रात चिन्तातुर रहने लगा। यह चिन्ता निष्कारण नहीं थी। धनहीन मनुष्य के गुणों का भी समाज में आदर नहीं होता। उसके शील-कुल-स्वभाव की श्रेष्ठता भी दरिद्रता में दब जाती है। बुद्धि, ज्ञान और प्रतिभा के सब गुण निर्धनता के तुषार में कुम्हला जाते हैं। जैसे पतझड़ के झंझावात में मौलसरी के फूल झड़ जाते हैं, उसी तरह घर-परिवार के पोषण की चिन्ता में उसकी बुद्धि कुन्द हो जाती है। घर की घी-तेल-नमक-चावल की निरन्तर चिन्ता प्रखर प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति की प्रतिभा को भी खा जाती है। धनहीन घर श्मशान का रूप धारण कर लेता है।

प्रियदर्शना पत्नी का सौन्दर्य भी रूखा और निर्जीव प्रतीत होने लगता है। जलाशय में उठते बुलबुलों की तरह उनकी मानमर्यादा समाज में नष्ट हो जाती है। निर्धनता की इन भयानक कल्पनाओं से मणिभद्र का दिल कांप उठा। उसने सोचा, इस अपमानपूर्ण जीवन से मृत्यु अच्छी है। इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि उसे नींद आ गई। नींद में उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में पद्मनिधि ने एक भिक्षु की वेषभूषा में उसे दर्शन दिये, और कहा "कि वैराग्य छोड़ दे। तेरे पूर्वजों ने मेरा भरपूर आदर किया था। इसीलिये तेरे घर आया हूँ। कल सुबह फिर इसी वेष में तेरे पास आऊँगा। उस समय तू मुझे लाठी की चोट से मार डालना। तब मैं मरकर स्वर्णमय हो जाऊँगा। वह स्वर्ण तेरी ग़रीबी को हमेशा के लिए मिटा देगा।"

सुबह उठने पर मणिभद्र इस स्वप्न की सार्थकता के संबन्ध में ही सोचता रहा। उसके मन में विचित्र शंकायें उठने लगीं। न जाने यह स्वप्न सत्य था या असत्य, यह संभव है या असंभव, इन्हीं विचारों में उसका मन डांवाडोल हो रहा था। हर समय धन की चिन्ता के कारण ही शायद उसे धनसंचय का स्वप्न आया था। उसे किसी के मुख से सुनी हुई यह बात याद आ गई कि रोगग्रस्त, शोकातुर, चिन्ताशील और कामार्त्त मनुष्य के स्वप्न निरर्थक होते हैं। उनकी सार्थकता के लिए आशावादी होना अपने को धोखा देना है।

मणिभद्र यह सोच ही रहा था कि स्वप्न में देखे हुए भिक्षु

के समान ही एक भिक्षु अचानक वहां आ गया। उसे देखकर मणिभद्र का चेहरा खिल गया, सपने की बात याद आ गई। उसने पास में पड़ी लाठी उठाई और भिक्षु के सिर पर मार दी। भिक्षु उसी क्षण मर गया। भूमि पर गिरने के साथ ही उसका सारा शरीर स्वर्णमय हो गया। मणिभद्र ने उसका स्वर्णमय मृत-देह छिपा लिया।

किन्तु, उसी समय एक नाई वहां आ गया था। उसने यह सब देख लिया था। मणिभद्र ने उसे पर्याप्त धन-वस्त्र आदि का लोभ देकर इस घटना को गुप्त रखने का आग्रह किया। नाई ने वह बात किसी और से तो नहीं कही, किन्तु धन कमाने की इस सरल रीति का स्वयं प्रयोग करने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा यदि एक भिक्षु लाठी से चोट खाकर स्वर्णमय हो सकता है तो दूसरा क्यों नहीं हो सकता। मन ही मन ठान ली कि वह भी कल सुबह कई भिक्षुओं को स्वर्णमय बनाकर एक ही दिन में मणिभद्र की तरह श्रीसंपन्न हो जाएगा। इसी आशा से वह रात भर सुबह होने की प्रतीक्षा करता रहा, एक पल भी नींद नहीं ली।

सुबह उठकर वह भिक्षुओं की खोज में निकला। पास ही एक भिक्षुओं का मन्दिर था। मन्दिर की तीन परिक्रमायें करने और अपनी मनोरथसिद्धि के लिये भगवान बुद्ध से वरदान मांगने के बाद वह मन्दिर के प्रधान भिक्षु के पास गया, उसके चरणों का स्पर्श किया और उचित वन्दना के बाद यह विनम्र निवेदन किया कि—"आज की भिक्षा के लिये आप समस्त

भिक्षुओं समेत मेरे द्वार पर पधारें।"

प्रधान भिक्षु ने नाई से कहा—"तुम शायद हमारी भिक्षा के नियमों से परिचित नहीं हो। हम उन ब्राह्मणों के समान नहीं हैं जो भोजन का निमन्त्रण पाकर गृहस्थों के घर जाते हैं। हम भिक्षु हैं, जो यथेच्छा से घूमते-घूमते किसी भी भक्तश्रावक के घर चले जाते हैं और वहां उतना ही भोजन करते हैं जितना प्राण धारण करने मात्र के लिये पर्याप्त हो। अतः, हमें निमन्त्रण न दो। अपने घर जाओ, हम किसी भी दिन तुम्हारे द्वार पर अचानक आ जायेंगे।"

नाई को प्रधान भिक्षु की बात से कुछ निराशा हुई, किन्तु उसने नई युक्ति से काम लिया। वह बोला—'मैं आपके नियमों से परिचित हूं, किन्तु मैं आपको भिक्षा के लिये नहीं बुला रहा। मेरा उद्देश्य तो आपको पुस्तक-लेखन की सामग्री देना है। इस महान् कार्य की सिद्धि आपके आये बिना नहीं होगी।" प्रधान भिक्षु नाई की बात मान गया। नाई ने जल्दी से घर की राह ली। वहां जाकर उसने लाठियां तैयार कर लीं, और उन्हें दरवाज़े के पास रख दिया। तैयारी पूरी हो जाने पर वह फिर भिक्षुओं के पास गया और उन्हें अपने घर की ओर ले चला। भिक्षु-वर्ग भी धन-वस्त्र के लालच से उसके पीछे-पीछे चलने लगा। भिक्षुओं के मन में भी तृष्णा का निवास रहता ही है। जगत् के सब प्रलोभन छोड़ने के बाद भी तृष्णा संपूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। उनके देह के अंगों में जीर्णता आ जाती है, बाल रूखे हो जाते

हैं, दांत टूट कर गिर जाते हैं, आंख-कान बूढ़े हो जाते हैं, केवल मन की तृष्णा ही है जो अन्तिम श्वास तक जवान रहती है।

उनकी तृष्णा ने ही उन्हें ठग लिया। नाई ने उन्हें घर के अन्दर लेजाकर लाठियों से मारना शुरू कर दिया। उनमें से कुछ तो वहीं धराशायी हो गये, और कुछ का सिर फूट गया। उनका कोलाहल सुनकर लोग एकत्र हो गये। नगर के द्वारपाल भी वहाँ आ पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि अनेक भिक्षुओं का मृतदेह पड़ा है, और अनेक भिक्षु आहत होकर प्राण-रक्षा के लिये इधर-उधर दौड़ रहे हैं।

नाई से जब इस रक्तपात का कारण पूछा गया तो उसने मणिभद्र के घर में आहत भिक्षु के स्वर्णमय हो जाने की बात बतलाते हुए कहा कि वह भी शीघ्र स्वर्ण संचय करना चाहता था। नाई के मुख से यह बात सुनने के बाद राज्य के अधिकारियों ने मणिभद्र को बुलाया और पूछा कि—"क्या तुमने किसी भिक्षु की हत्या की है?"

मणिभद्र ने अपने स्वप्न की कहानी आरंभ से लेकर अन्त तक सुना दी। राज्य के धर्माधिकारियों ने उस नाई को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी। और कहा—ऐसे 'कुपरीक्षितकारी'—बिना सोचे काम करने वाले के लिये यही दण्ड उचित था। मनुष्य को उचित है कि वह अच्छी तरह देखे, जाने, सुने और उचित परीक्षा किये बिना कोई भी कार्य न करे। अन्यथा उसका वही परिणाम होता है जो इस कहानी के नाई का हुआ। और उसे बाद में वैसा ही सन्ताप होता है जैसा नेवले को मारने वाली ब्राह्मणी को हुआ था।"

मणिभद्र ने पूछा—"किस ब्राह्मणी को?"

धर्माधिकारियों ने इसके उत्तर में निम्न कथा सुनाई—

१.

बिना विचारे जो करे

अपरीक्ष्य न कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं सुपरीक्षितम् ।
पश्चात् भवति सन्तापो ब्राह्मण्या नकुलार्थतः ॥

* * * *

अपरीक्षित काम का परिणाम बुरा होता है

* * * *

एक बार देवशर्मा नाम के ब्राह्मण के घर जिस दिन पुत्र का जन्म हुआ उसी दिन उसके घर में रहने वाली नकुली ने भी एक नेवले को जन्म दिया। देवशर्मा की पत्नी बहुत दयालु स्वभाव की स्त्री थी। उसने उस छोटे नेवले को भी अपने पुत्र के समान ही पाला-पोसा और बड़ा किया। वह नेवला सदा उसके पुत्र के साथ खेलता था। दोनों में बड़ा प्रेम था। देवशर्मा की पत्नी भी दोनों के प्रेम को देखकर प्रसन्न थी। किन्तु, उसके मन में यह शंका हमेशा रहती थी कि कभी यह नेवला उसके पुत्र को न काट खाये। पशु के बुद्धि नहीं होती, मूर्खतावश वह कोई भी अनिष्ट कर सकता है।

एक दिन उसकी इस आशंका का बुरा परिणाम निकल आया।

उस दिन देवशर्मा की पत्नी अपने पुत्र को एक वृक्ष की छाया में सुलाकर स्वयं पास के जलाशय से पानी भरने गई थी। जाते हुए वह अपने पति देवशर्मा से कह गई थी कि वहीं ठहर कर वह पुत्र की देख-रेख करे, कहीं ऐसा न हो कि नेवला उसे काट खाये। पत्नी के जाने के बाद देवशर्मा ने सोचा, 'कि नेवले और बच्चे में गहरी मैत्री है, नेवला बच्चे को हानि नहीं पहुँचायेगा।' यह सोचकर वह अपने सोये हुए बच्चे और नेवले को वृक्ष की छाया में छोड़कर स्वयं भिक्षा के लोभ से कहीं चल पड़ा।

दैववश उसी समय एक काला नाग पास के बिल से बाहिर निकला। नेवले ने उसे देख लिया। उसे डर हुआ कि कहीं यह उसके मित्र को न डस ले, इसलिये वह काले नाग पर टूट पड़ा, और स्वयं बहुत क्षत-विक्षत होते हुए भी उसने नाग के खंड-खंड कर दिये। सांप को मारने के बाद वह उसी दिशा में चल पड़ा, जिधर देवशर्मा की पत्नी पानी भरने गई थी। उसने सोचा कि वह उसकी वीरता की प्रशंसा करेगी, किन्तु हुआ इसके विपरीत। उसकी खून से सनी देह को देखकर ब्राह्मणपत्नी का मन उन्हीं पुरानी आशङ्काओं से भर गया कि कहीं इसने उसके पुत्र की हत्या न कर दी हो। यह विचार आते ही उसने क्रोध से सिर पर उठाये घड़े को नेवले पर फैंक दिया। छोटा सा नेवला जल से भारी घड़े की चोट खाकर वहीं मर गया। ब्राह्मण-पत्नी वहाँ से भागती हुई वृक्ष के नीचे पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि उसका पुत्र बड़ी शान्ति से सो रहा है, और उससे कुछ दूरी पर एक

काले साँप का शरीर खँड-खँड हुआ पड़ा है। तब उसे नेवले की वीरता का ज्ञान हुआ। पश्चात्ताप से उसकी छाती फटने लगी।

इसी बीच ब्राह्मण देवशर्मा भी वहाँ आ गया। वहाँ आकर उसने अपनी पत्नी को विलाप करते देखा तो उसका मन भी सशंकित हो गया। किन्तु पुत्र को कुशलपूर्वक सोते देख उसका मन शान्त हुआ। पत्नी ने अपने पति देवशर्मा को रोते-रोते नेवले की मृत्यु का समाचार सुनाया और कहा—"मैं तुम्हें यहीं ठहर कर बच्चे की देख-भाल के लिये कह गई थी। तुमने भिक्षा के लोभ से मेरा कहना नहीं माना। इसी से यह परिणाम हुआ। मनुष्य को अतिलोभ नहीं करना चाहिये। अतिलोभ से कई बार मनुष्य के मस्तक पर चक्र लग जाता है।"

ब्राह्मण ने पूछा—"यह कैसे ?"

ब्राह्मणी ने तब निम्न कथा सुनाई—

२.

लालच बुरी बला

अतिलोभो न कर्त्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत् ।
अतिलोभाभिभूतस्य चक्रं भवति मस्तके ॥

. . . . .

धन के अति लोभ से मनुष्य धन-संचय के चक्कर में ऐसा फँस जाता है जो उसे केवल कष्ट ही कष्ट देता है।

. . . . .

एक नगर में चार ब्राह्मण पुत्र रहते थे। चारों में गहरी मैत्री थी। चारों ही निर्धन थे। निर्धनता को दूर करने के लिए चारों चिन्तित थे। उन्होंने अनुभव कर लिया था कि अपने बन्धु-बान्धवों में धनहीन जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा शेर-हाथियों से भरे कंटीले जङ्गल में रहना अच्छा है। निर्धन व्यक्ति को सब अनादर की दृष्टि से देखते हैं, बन्धु-बान्धव भी उस से किनारा कर लेते हैं, अपने ही पुत्र-पौत्र भी उस से मुख मोड़ लेते हैं, पत्नी भी उससे विरक्त हो जाती है। मनुष्यलोक में धन के बिना न यश संभव है, न सुख। धन हो तो कायर भी वीर हो जाता है, कुरूप भी सुरूप कहलाता है, और मूर्ख भी पंडित बन जाता है।

यह सोचकर उन्होंने धन कमाने के लिये किसी दूसरे देश को जाने का निश्चय किया। अपने बन्धु-बान्धवों को छोड़ा, अपनी जन्म-भूमि से विदा ली और विदेश-यात्रा के लिये चल पड़े।

चलते-चलते क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ नदी के शीतल जल में स्नान करने के बाद महाकाल को प्रणाम किया। थोड़ी दूर आगे जाने पर उन्हें एक जटाजूटधारी योगी दिखाई दिये। इन योगिराज का नाम भैरवानन्द था। योगिराज इन चारों नौजवान ब्राह्मणपुत्रों को अपने आश्रम में ले गए और उनसे प्रवास का प्रयोजन पूछा। चारों ने कहा—"हम अर्थ-सिद्धि के लिये यात्री बने हैं। धनोपार्जन ही हमारा लक्ष्य है। अब या तो धन कमा कर ही लौटेंगे या मृत्यु का स्वागत करेंगे। इस धनहीन जीवन से मृत्यु अच्छी है।"

योगिराज ने उनके निश्चय की परीक्षा के लिये जब यह कहा कि धनवान बनना तो दैव के अधीन है, तब उन्होंने उत्तर दिया—"यह सच है कि भाग्य ही पुरुष को धनी बनाता है, किन्तु साहसिक पुरुष भी अवसर का लाभ उठा कर अपने भाग्य को बदल लेते हैं। पुरुष का पौरुष कभी-कभी दैव से भी अधिक बलवान हो जाता है। इसलिए आप हमें भाग्य का नाम लेकर निरुत्साहित न करें। हमने अब धनोपार्जन का प्रण पूरा करके ही लौटने का निश्चय किया है। आप अनेक सिद्धियों को जानते हैं। आप चाहें तो हमें सहायता दे सकते हैं, हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। योगी होने के कारण आपके पास महती शक्तियाँ हैं। हमारा

निश्चय भी महान् है। महान् ही महान् की सहायता कर सकता है।"

भैरवानन्द को उनकी दृढ़ता देखकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्न होकर धन कमाने का एक रास्ता बतलाते हुए उन्होंने कहा—"तुम हाथों में दीपक लेकर हिमालय पर्वत की ओर जाओ। वहाँ जाते-जाते जब तुम्हारे हाथ का दीपक नीचे गिर पड़े तो ठहर जाओ। जिस स्थान पर दीपक गिरे उसे खोदो। वहीं तुम्हें धन मिलेगा। धन लेकर वापिस चले आओ।"

चारों युवक हाथों में दीपक लेकर चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद उन में से एक के हाथ का दीपक भूमि पर गिर पड़ा। उस भूमि को खोदने पर उन्हें ताम्रमयी भूमि मिली। वह तांबे की खान थी। उसने कहा—"यहाँ जितना चाहो, ताँबा ले लो।" अन्य युवक बोले—"मूर्ख! ताँबे से दरिद्रता दूर नहीं होगी। हम आगे बढ़ेंगे। आगे इस से अधिक मूल्य की वस्तु मिलेगी।" उसने कहा—"तुम आगे जाओ, मैं तो यहीं रहूँगा।" यह कहकर उसने यथेष्ट ताँबा लिया और घर लौट आया।

शेष तीनों मित्र आगे बढ़े। कुछ दूर आगे जाने के बाद उन में से एक के हाथ का दीपक ज़मीन पर गिर पड़ा। उसने ज़मीन खोदी तो चाँदी की खान पाई। प्रसन्न होकर वह बोला—"यहाँ जितनी चाहो चाँदी ले लो, आगे मत जाओ।" शेष दो मित्र बोले—"पीछे ताँबे की खान मिली थी, यहाँ चाँदी की खान मिली है; निश्चय ही आगे सोने की खान मिलेगी। इसलिये हम तो

आगे ही बढ़ेंगे।" यह कहकर दोनों मित्र आगे बढ़ गये।

उन दो में से एक के हाथ से फिर दीपक गिर गया। खोदने पर उसे सोने की खान मिल गई। उसने कहा—"यहाँ जितना चाहो सोना ले लो। हमारी दरिद्रता का अन्त हो जायगा। सोने से उत्तम कौन-सी चीज़ है। आओ, सोने की खान से यथेष्ट सोना खोद लें और घर ले चलें।" उसके मित्र ने उत्तर दिया—"मूर्ख! पहिले ताँबा मिला था, फिर चाँदी मिली, अब सोना मिला है; निश्चय ही आगे रत्नों की खान होगी। सोने की खान छोड़ दे और आगे चल।" किन्तु, वह न माना। उसने कहा—"मैं तो सोना लेकर ही घर चला जाऊँगा, तूने आगे जाना है तो जा।"

अब वह चौथा युवक एकाकी आगे बढ़ा। रास्ता बड़ा विकट था। काँटों से उसका पैर छलनी हो गया। बर्फ़ीले रास्तों पर चलते-चलते शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया, किन्तु वह आगे ही आगे बढ़ता गया।

बहुत दूर जाने के बाद उसे एक मनुष्य मिला, जिसका सारा शरीर खून से लथपथ था, और जिसके मस्तक पर चक्र घूम रहा था। उसके पास जाकर चौथा युवक बोला—"तुम कौन हो? तुम्हारे मस्तक पर चक्र क्यों घूम रहा है? यहाँ कहीं जलाशय है तो बतलाओ, मुझे प्यास लगी है।"

यह कहते ही उसके मस्तक का चक्र उतर कर ब्राह्मणयुवक के मस्तक पर लग गया। युवक के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने कष्ट से कराहते हुए पूछा—"यह क्या हुआ? यह चक्र

तुम्हारे मस्तक से छूटकर मेरे मस्तक पर क्यों लग गया ?"

अजनबी मनुष्य ने उत्तर दिया—"मेरे मस्तक पर भी यह इसी तरह अचानक लग गया था। अब यह तुम्हारे मस्तक से तभी उतरेगा जब कोई व्यक्ति धन के लोभ में घूमता हुआ यहाँ तक पहुँचेगा और तुम से बात करेगा।"

युवक ने पूछा—"यह कब होगा ?"

अजनबी—"अब कौन राजा राज्य कर रहा है ?"

युवक—"वीणा वत्सराज।"

अजनबी—"मुझे काल का ज्ञान नहीं। मैं राजा राम के राज्य में दरिद्र हुआ था, और सिद्धि का दीपक लेकर यहाँ तक पहुँचा था। मैंने भी एक और मनुष्य से यही प्रश्न किये थे, जो तुम ने मुझ से किये हैं।"

युवक—"किन्तु, इतने समय में तुम्हें भोजन व जल कैसे मिलता रहा ?"

अजनबी—"यह चक्र धन के अति लोभी पुरुषों के लिये बना है। इस चक्र के मस्तक पर लगने के बाद मनुष्य को भूख, प्यास, नींद, जरा, मरण आदि नहीं सताते। केवल चक्र घूमने का कष्ट ही सताता रहता है। वह व्यक्ति अनन्त काल तक कष्ट भोगता है।"

यह कहकर वह चला गया। और वह अति लोभी ब्राह्मण युवक कष्ट भोगने के लिए वहीं रह गया। थोड़ी देर बाद खून से लथपथ हुआ वह इधर-उधर घूमते-घूमते उस मित्र के पास पहुँचा जिसे स्वर्ण की सिद्धि हुई थी, और जो अब स्वर्ण-कण बटोर रहा

था। उससे चक्रधर ब्राह्मण युवक ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। स्वर्ण-सिद्धि युवक ने चक्रधर युवक को कहा कि—"मैंने तुझे आगे जाने से रोका था। तू ने तब मेरा कहना नहीं माना। बात यह है कि तुझे ब्राह्मण होने के कारण विद्या तो मिल गई, कुलीनता भी मिली; किन्तु भले बुरे को परखने वाली बुद्धि नहीं मिली। विद्या की अपेक्षा बुद्धि का स्थान ऊँचा है। विद्या होते हुए जिनके पास बुद्धि नहीं होती, वे सिंहकारकों की तरह नष्ट हो जाते हैं।"

चक्रधर ने पूछा—"किन सिंहकारकों की तरह?"

स्वर्णसिद्धि ने तब अगली कथा सुनाई—

१.
वैज्ञानिक मूर्ख

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा ।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ॥

.　　　.　　　.　　　.

बुद्धि का स्थान विद्या से ऊँचा है ।

.　　　.　　　.　　　.

एक नगर में चार मित्र रहते थे । उनमें से तीन बड़े वैज्ञानिक थे, किन्तु बुद्धिरहित थे; चौथा वैज्ञानिक नहीं था, किन्तु बुद्धिमान् था । चारों ने सोचा कि विद्या का लाभ तभी हो सकता है, यदि वे विदेशों में जाकर धन संग्रह करें । इसी विचार से वे विदेश-यात्रा को चल पड़े ।

कुछ दूर जाकर उनमें से सब से बड़े ने कहा—

"हम चारों विद्वानों में एक विद्या-शून्य है, वह केवल बुद्धिमान् है । धनोपार्जन के लिये और धनिकों की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये विद्या आवश्यक है । विद्या के चमत्कार से ही हम उन्हें प्रभावित कर सकते हैं । अतः हम अपने धन का कोई भी भाग इस विद्या-हीन को नहीं देंगे । वह चाहे तो घर वापिस चला जाये ।"

दूसरे ने इस बात का समर्थन किया। किन्तु, तीसरे ने कहा—"यह बात उचित नहीं है। बचपन से ही हम एक दूसरे के सुख-दुःख के समभागी रहे हैं। हम जो भी धन कमायेंगे, उसमें इसका हिस्सा रहेगा। अपने-पराये की गणना छोटे दिल वालों का काम है। उदार-चरित व्यक्तियों के लिये सारा संसार ही अपना कुटुम्ब होता है। हमें उदारता दिखलानी चाहिये।"

उसकी बात मानकर चारों आगे चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर उन्हें जंगल में एक शेर का मृत-शरीर मिला। उसके अंग-प्रत्यंग बिखरे हुए थे। तीनों विद्याभिमानी युवकों ने कहा, "आओ, हम अपनी विज्ञान की शिक्षा की परीक्षा करें। विज्ञान के प्रभाव से हम इस मृत-शरीर में नया जीवन डाल सकते हैं।" यह कह कर तीनों उसकी हड्डियां बटोरने और बिखरे हुए अंगों को मिलाने में लग गये। एक ने अस्थिसंचय किया, दूसरे ने चर्म, मांस, रुधिर संयुक्त किया, तीसरे ने प्राणों के संचार की प्रक्रिया शुरू की। इतने में विज्ञान-शिक्षा से रहित, किन्तु बुद्धिमान् मित्र ने उन्हें सावधान करते हुए कहा—"ज़रा ठहरो। तुम लोग अपनी विद्या के प्रभाव से शेर को जीवित कर रहे हो। वह जीवित होते ही तुम्हें मारकर खाजायेगा।"

वैज्ञानिक मित्रों ने उसकी बात को अनसुना कर दिया। तब वह बुद्धिमान् बोला—"यदि तुम्हें अपनी विद्या का चमत्कार दिखलाना ही है तो दिखलाओ। लेकिन एक क्षण ठहर जाओ, मैं वृक्ष पर चढ जाऊँ।" यह कहकर वह वृक्ष पर चढ गया।

इतने में तीनों वैज्ञानिकों ने शेर को जीवित कर दिया। जीवित होते ही शेर ने तीनों पर हमला कर दिया। तीनों मारे गये।

× × ×

अतः शास्त्रों में कुशल होना ही पर्याप्त नहीं है। लोक-व्यवहार को समझने और लोकाचार के अनुकूल काम करने की बुद्धि भी होनी चाहिये। अन्यथा लोकाचार-हीन विद्वान् भी मूर्ख-पंडितों की तरह उपहास के पात्र बनते हैं।"

चक्रधर ने पूछा—"कौन से मूर्ख पंडितों की तरह?"

स्वर्णसिद्धि युवक ने तब यह अगली कथा सुनाई—

४.

चार मूर्ख पंडित

"अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः ।
सर्वे ते हास्यतां यान्ति यथा ते मूर्खपंडिताः ॥"

. . . .

व्यवहार-बुद्धि के बिना पंडित भी मूर्ख होते हैं ।

. . . .

एक स्थान पर चार ब्राह्मण रहते थे । चारों विद्याभ्यास के लिये कान्यकुब्ज गये । निरन्तर १२ वर्ष तक विद्या पढ़ने के बाद वे सम्पूर्ण शास्त्रों के पारंगत विद्वान् हो गये, किन्तु व्यवहार-बुद्धि से चारों खाली थे । विद्याभ्यास के बाद चारों स्वदेश के लिये लौट पड़े । कुछ देर चलने के बाद रास्ता दो ओर फटता था । 'किस मार्ग से जाना चाहिये,' इसका कोई भी निश्चय न करने पर वे वहीं बैठ गये । इसी समय वहां से एक मृत वैश्य बालक की अर्थी निकली । अर्थी के साथ बहुत से महाजन भी थे । 'महाजन' नाम से उनमें से एक को कुछ याद आ गया । उसने पुस्तक के पन्ने पलटकर देखा तो लिखा था—"महाजनो येन गतः स पन्थाः"—अर्थात् जिस मार्ग से महाजन जाये, वही मार्ग है । पुस्तक में लिखे

को ब्रह्म-वाक्य मानने वाले चारों पंडित महाजनों के पीछे-पीछे श्मशान की ओर चल पड़े।

थोड़ी दूर पर श्मशान में उन्होंने एक गधे को खड़ा हुआ देखा। गधे को देखते ही उन्हें शास्त्र की यह बात याद आ गई "राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः"—अर्थात् राजद्वार और श्मशान में जो खड़ा हो, वह भाई होता है। फिर क्या था, चारों ने उस श्मशान में खड़े गधे को भाई बना लिया। कोई उसके गले से लिपट गया, तो कोई उसके पैर धोने लगा।

इतने में एक ऊँट उधर से गुज़रा। उसे देखकर सब विचार में पड़ गये कि यह कौन है। १२ वर्ष तक विद्यालय की चार· दीवारी में रहते हुए उन्हें पुस्तकों के अतिरिक्त संसार की किसी वस्तु का ज्ञान नहीं था। ऊँट को वेग से भागते हुए देखकर उनमें से एक को पुस्तक में लिखा यह वाक्य याद आ गया—"धर्मस्य त्वरिता गतिः"—अर्थात् धर्म की गति में बड़ा वेग होता है। उन्हें निश्चय हो गया कि वेग से जाने वाली यह वस्तु अवश्य धर्म है। उसी समय उनमें से एक को याद आया—"इष्टं धर्मेण योजयेत्"—अर्थात् धर्म का संयोग इष्ट से करादे। उनकी समझ में इष्ट बान्धव था गधा और ऊँट था धर्म; दोनों का संयोग कराना उन्होंने शास्त्रोक्त मान लिया। बस, खींचखांच कर उन्होंने ऊँट के गले में गधा बाँध दिया। वह गधा एक धोबी का था। उसे पता लगा तो वह भागा हुआ आया। उसे अपनी ओर आता देखकर चारों शास्त्र-पारंगत पंडित वहाँ से भाग खड़े हुए।

थोड़ी दूर पर एक नदी थी। नदी में पलाश का एक पत्ता तैरता हुआ आ रहा था। इसे देखते ही उनमें से एक को याद आ गया—"आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति"—अर्थात् जो पत्ता तैरता हुआ आयगा, वही हमारा उद्धार करेगा। उद्धार की इच्छा से वह मूर्ख पंडित पत्ते पर लेट गया। पत्ता पानी में डूब गया तो वह भी डूबने लगा। केवल उसकी शिखा पानी से बाहिर रह गई। इसी तरह बहते-बहते जब वह दूसरे मूर्ख पंडित के पास पहुँचा तो उसे एक और शास्त्रोक्त वाक्य याद आ गया—"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः"—अर्थात् सम्पूर्ण का नाश होते देखकर आधे को बचाले और आधे का त्याग करदे। यह याद आते ही उसने बहते हुए पूरे आदमी का आधा भाग बचाने के लिये उसकी शिखा पकड़कर गरदन काट दी। उसके हाथ में केवल सिर का हिस्सा आ गया। देह पानी में बह गई।

उन चार के अब तीन रह गये। गाँव पहुँचने पर तीनों को अलग-अलग घरों में ठहराया गया। वहां उन्हें जब भोजन दिया गया तो एक ने सेमियों को यह कहकर छोड़ दिया—"दीर्घसूत्री विनश्यति"—अर्थात् दीर्घ तन्तु वाली वस्तु नष्ट हो जाती है। दूसरे को रोटियां दी गईं तो उसे याद आ गया—"अतिविस्तारविस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम्"—अर्थात् बहुत फैली हुई वस्तु आयु को घटाती है। तीसरे को छिद्र वाली वटिका दी गयी तो उसे याद आ गया—'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति'—अर्थात् छिद्र वाली वस्तु में बहुत अनर्थ होते हैं। परिणाम यह हुआ कि तीनों की जग-

हँसाई हुई और तीनों भूखे भी रहे।

× × ×

व्यवहार-बुद्धि के बिना पंडित भी मूर्ख ही रहते हैं। व्यवहार-बुद्धि भी एक ही होती है। सैंकड़ों बुद्धियाँ रखने वाला सदा डांवा-डोल रहता है। उसकी वही दशा होती है जो शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि मछली की हुई थी। मंडूक के पास एक ही बुद्धि थी—इसलिये वह बच गया।

चक्रधर ने पूछा—"यह कैसे हुआ?"

स्वर्णसिद्धि ने तब यह कथा सुनाई—

५.

एकबुद्धि की कथा

. . . .

एक व्यवहार बुद्धि सौ अव्यावहारिक
बुद्धियों से अच्छी है।

. . . .

एक तालाब में दो मछलियाँ रहती थीं। एक थी शतबुद्धि (सौ बुद्धियों वाली), दूसरी थी सहस्रबुद्धि (हजार बुद्धियों वाली)। उसी तालाब में एक मेंढक भी रहता था। उसका नाम था एकबुद्धि। उसके पास एक ही बुद्धि थी। इसलिये उसे बुद्धि पर अभिमान नहीं था। शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि को अपनी चतुराई पर बड़ा अभिमान था।

एक दिन सन्ध्या समय तीनों तालाब के किनारे बात-चीत कर रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि कुछ मछियारे हाथों में जाल लेकर वहाँ आये। उनके जाल में बहुत सी मछलियाँ फँस कर तड़प रही थीं। तालाब के किनारे आकर मछियारे आपस में बात करने लगे। एक ने कहा—

"इस तालाब में खूब मछलियाँ हैं, पानी भी कम है। कल हम यहाँ आकर मछलियां पकड़ेंगे।"

सबने उसकी बात का समर्थन किया। कल सुबह वहाँ आने का निश्चय करके मछियारे चले गये। उनके जाने के बाद सब मछलियों ने सभा की। सभी चिन्तित थे कि क्या किया जाय। सब की चिन्ता का उपहास करते हुये सहस्रबुद्धि ने कहा—"डरो मत, दुनियां में सभी दुर्जनों के मन की बात पूरी होने लगे तो संसार में किसी का रहना कठिन हो जाय। सांपों और दुष्टों के अभिप्राय कभी पूरे नहीं होते; इसीलिये संसार बना हुआ है। किसी के कथनमात्र से डरना कापुरुषों का काम है। प्रथम तो वह यहाँ आयेंगे ही नहीं, यदि आ भी गये तो मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से सब की रक्षा करलूँगी।" शतबुद्धि ने भी उसका समर्थन करते हुए कहा—"बुद्धिमान के लिए संसार में सब कुछ संभव है। जहां वायु और प्रकाश की भी गति नहीं होती, वहां बुद्धिमानों की बुद्धि पहुँच जाती है। किसी के कथनमात्र से हम अपने पूर्वजों की भूमि को नहीं छोड़ सकते। अपनी जन्मभूमि में जो सुख होता है वह स्वर्ग में भी नहीं होता। भगवान ने हमें बुद्धि दी है, भय से भागने के लिए नहीं, बल्कि भय का युक्तिपूर्वक सामना करने के लिए।"

तालाब की मछलियों को तो शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि के आश्वासन पर भरोसा हो गया, लेकिन एकबुद्धि मेंढक ने कहा—"मित्रो! मेरे पास तो एक ही बुद्धि है; वह मुझे यहां से भाग

जाने की सलाह देती है। इसलिए मैं तो सुबह होने से पहले ही इस जलाशय को छोड़कर अपनी पत्नी के साथ दूसरे जलाशय में चला जाऊँगा।" यह कहकर वह मेंढक मेंढकी को लेकर तालाब से चला गया।

दूसरे दिन अपने वचनानुसार वही मछियारे वहाँ आये। उन्होंने तालाब में जाल बिछा दिया। तालाब की सभी मछलियां जाल में फँस गईं। शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि ने बचाव के लिए बहुत से पैंतरे बदले, किन्तु मछियारे भी अनाड़ी न थे। उन्होंने चुन-चुन कर सब मछलियों को जाल में बांध लिया। सबने तड़प-तड़प कर प्राण दिये।

सन्ध्या समय मछियारों ने मछलियों से भरे जाल को कन्धे पर उठा लिया। शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि बहुत भारी मछलियां थीं, इसीलिए इन दोनों को उन्होंने कन्धे पर और हाथों पर लटका लिया था। उनकी दुरवस्था देखकर मेंढक ने मेंढकी से कहा—

"देख प्रिये ! मैं कितना दूरदर्शी हूं। जिस समय शतबुद्धि कन्धों पर और सहस्रबुद्धि हाथों में लटकी जा रही है, उस समय मैं एकबुद्धि इस छोटे से जलाशय के निर्मल जल में सानन्द विहार कर रहा हूँ। इसलिए मैं कहता हूँ कि विद्या से बुद्धि का स्थान ऊँचा है, और बुद्धि में भी सहस्रबुद्धि की अपेक्षा एकबुद्धि होना अधिक व्यावहारिक है।"

× × ×

यह कहानी पूरी होने के बाद चक्रधर ने पूछा—

"तो क्या मित्र की सलाह सदा माननी चाहिए?"

स्वर्णसिद्धि ने उत्तर दिया—

"मित्र के वचन का उल्लंघन ठीक नहीं है। जो विद्या-बुद्धि के अहंकार या लोभवश मित्र की बात को अनसुनी कर देते हैं वे अपने मित्र गीदड़ की बात न मानने वाले गधे की तरह कष्ट उठाते हैं।

चक्रधर ने पूछा—"वह कैसे?"

स्वर्णसिद्धि ने तब यह कथा सुनाई—

६.

संगीतविशारद गधा

साधु मातुल ! गीतेन मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः ।
अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः संप्राप्तं गीतलक्षणम् ॥

मित्र की सलाह मानो

एक गांव में उद्धत नाम का गधा रहता था। दिन में धोबी का भार ढोने के बाद रात को वह स्वेच्छा से खेतों में घूमा करता था। सुबह होने पर वह स्वयं धोबी के पास आ जाता था।

रात को खेतों में घूमते-घूमते उसकी जान-पहचान एक गीदड़ से हो गई। गीदड़ मैत्री करने में बड़े चतुर होते हैं। गधे के साथ गीदड़ भी खेतों में जाने लगा। खेत की बाड़ को तोड़ कर गधा अन्दर चला जाता था और वहां गीदड़ के साथ मिलकर कोमल-कोमल ककड़ियां खाकर सुबह अपने घर आ जाता था।

एक दिन गधा उमंग में आ गया। चांदनी रात थी। दूर तक खेत लहलहा रहे थे। गधे ने कहा—"मित्र! आज कितनी निर्मल चांदनी खिली है। जी चाहता है, आज खूब गीत गाऊँ। मुझे

सब राग-रागनियां आती हैं। तुझे जो गीत पसन्द हो, वही गाऊँगा। भला, कौनसा गाऊँ, तू ही बता।"

गीदड़ ने कहा—'मामा! इन बातों को रहने दो। क्यों अनर्थ बखेरते हो? अपनी मुसीबत आप बुलाने से क्या लाभ? शायद, तुम भूल गये कि हम चोरी से खेत में आये हैं। चोर को तो खांसना भी मना है, और तुम ऊँचे स्वर से राग-रागनी गाने की सोच रहे हो। और शायद तुम यह भी भूल गए कि तुम्हारा स्वर मधुर नहीं है। तुम्हारी शंखध्वनि दूर-दूर तक जायेगी। इन खेतों के बाहर रखवाले सो रहे हैं। वे जाग गये तो तुम्हारी हड्डियां तोड़ देंगे। कल्याण चाहते हो तो इन उमंगों को भूल जाओ; आनन्द पूर्वक अमृत जैसी मीठी ककड़ियों से पेट भरो। संगीत का व्यसन तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है।"

गीदड़ की बात सुनकर गधे ने उत्तर दिया। "मित्र! तुम वनचर हो, जंगलों में रहते हो, इसीलिये संगीत सुधा का रसास्वाद तुमने नहीं किया है। तभी तुम ऐसी बातें कह रहे हो।"

गीदड़ ने कहा—"मामा! तुम्हारी बात ही ठीक सही, लेकिन तुम भी संगीत तो नहीं जानते, केवल गले से ढीचू-ढीचू करना ही जानते हो।"

गधे को गीदड़ की बात पर क्रोध तो बहुत आया, किन्तु क्रोध को पीते हुए गधा बोला—"गीदड़! यदि मुझे संगीत विद्या का ज्ञान नहीं तो किस को होगा? मैं तीनों ग्रामों, सातों स्वरों, २१ मूर्छनाओं, ४९ तालों, तीनों लयों, और तीस मात्राओं के भेदों

को जानता हूँ। राग में तीन यति विराम होते हैं, नौ रस होते हैं। ३६ राग-रागिनियों का मैं पंडित हूँ। ४० तरह के संचारी-व्यभिचारी भावों को भी मैं जानता हूँ। तब भी तू मुझे रागी नहीं मानता। कारण, कि तू स्वयं राग-विद्या से अनभिज्ञ है।"

गीदड़ ने कहा—"मामा ! यदि यही बात है तो मैं तुझे नहीं रोकूंगा। मैं खेत के दरवाजे पर खड़ा चौकीदारी करता हूँ, तू जैसा जी चाहे गाना गा।"

गीदड़ के जाने के बाद गधे ने अपना आलाप शुरू कर दिया। उसे सुनकर खेत के रखवाले दांत पीसते हुए भागे आये। वहाँ आकर उन्होंने गधे को लाठियों से मार-मार कर ज़मीन पर गिरा दिया। उन्होंने उसके गले में सांकली भी बांध दी। गधा भी थोड़ी देर कष्ट से तड़पने के बाद उठ बैठा। गधे का स्वभाव है कि वह बहुत जल्दी कष्ट को बात भूल जाता है। लाठियों की मार की याद मूहूर्त भर ही उसे सताती है।

गधे ने थोड़ी देर में सांकली तुड़ाली और भागना शुरू कर दिया। गीदड़ भी उस समय दूर खड़ा सब तमाशा देख रहा था। मुस्कराते हुए वह गधे से बोला—"क्यों मामा ! मेरे मना करते-करते भी तुमने आलापना शुरू कर दिया। इसीलिये तुम्हें यह दंड मिला। मित्रों की सलाह का ऐसा तिरस्कार करना उचित नहीं है।"

× × ×

चक्रधर ने इस कहानी को सुनने के बाद स्वर्णसिद्धि से

कहा—"मित्र ! बात तो सच है। जिसके पास न तो स्वयं बुद्धि है और न जो मित्र की सलाह मानता है, वह मन्थरक नाम के जुलाहे की तरह तबाह हो जाता है।"

स्वर्णसिद्धि ने पूछा—"वह कैसे ?"

चक्रधर ने तब यह कहानी सुनाई—

उस खोल में वही कबूतर रहता था जिसकी पत्नी को व्याध ने जाल में फँसाया था। कबूतर उस समय पत्नी के वियोग से दुःखी होकर विलाप कर रहा था। पति को प्रेमातुर पाकर कबूतरी का मन आनन्द से नाच उठा। उसने मन ही मन सोचा—'मेरे धन्य भाग्य हैं जो ऐसा प्रेमी पति मिला है। पति का प्रेम ही पत्नी का जीवन है। पति की प्रसन्नता से ही स्त्री-जीवन सफल होता है। मेरा जीवन सफल हुआ।' यह विचार कर वह पति से बोली—

"पतिदेव! मैं तुम्हारे सामने हूँ। इस व्याध ने मुझे बाँध लिया है। यह मेरे पुराने कर्मों का फल है। हम अपने कर्मफल से ही दुःख भोगते हैं। मेरे बन्धन की चिन्ता छोड़कर तुम इस समय अपने शरणागत अतिथि की सेवा करो। जो जीव अपने अतिथि का सत्कार नहीं करता उसके सब पुण्य छूटकर अतिथि के साथ चले जाते हैं और सब पाप वहीं रह जाते हैं।"

पत्नी की बात सुन कर कबूतर ने व्याध से कहा—"चिन्ता न करो वधिक! इस घर को भी अपना ही जानो। कहो, मैं तुम्हारी कौन सी सेवा कर सकता हूँ?"

व्याध—"मुझे सर्दी सता रही है, इसका उपाय कर दो।"

कबूतर ने लकड़ियाँ इकट्ठी करके जला दीं। और कहा—"तुम आग सेक कर सर्दी दूर कर लो।"

कबूतर को अब अतिथि-सेवा के लिये भोजन की चिन्ता हुई। किन्तु, उसके घोंसले में तो अन्न का एक दाना भी नहीं था। बहुत सोचने के बाद उसने अपने शरीर से ही व्याध की भूख मिटाने

उपकरण नहीं बनेंगे, कपड़ा नहीं बुना जायगा, जिससे मेरे कुटुम्बी भूखे मर जायेंगे। इसलिये अच्छा यही है कि तुम किसी और वृक्ष का आश्रय लो, मैं इस वृक्ष की शाखायें काटने को विवश हूँ।"

देव ने कहा—"मन्थरक ! मैं तुम्हारे उत्तर से प्रसन्न हूँ। तुम कोई भी एक वर माँग लो, मैं उसे पूरा करूँगा, केवल इस वृक्ष को मत काटो।"

मन्थरक बोला—"यदि यही बात है तो मुझे कुछ देर का अवकाश दो। मैं अभी घर जाकर अपनी पत्नी से और मित्र से सलाह करके तुम से वर मांगूंगा।"

देव ने कहा—"मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

गाँव में पहुँचने के बाद मन्थरक की भेंट अपने एक मित्र नाई से हो गई। उसने उससे पूछा—"मित्र ! एक देव मुझे वरदान दे रहा है, मैं तुझ से पूछने आया हूँ कि कौन सा वरदान माँगा जाए।"

नाई ने कहा—"यदि ऐसा ही है तो राज्य मांग ले। मैं तेरा मन्त्री बन जाऊंगा, हम सुख से रहेंगे।"

तब, मन्थरक ने अपनी पत्नी से सलाह लेने के बाद वरदान का निश्चय करने की बात नाई से कही। नाई ने स्त्रियों के साथ ऐसी मन्त्रणा करना नीति-विरुद्ध बतलाया। उसने सम्मति दी कि "स्त्रियां प्रायः स्वार्थपरायणा होती हैं। अपने सुख-साधन के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी सूझ नहीं सकता। अपने पुत्र को भी जब वह प्यार करती है, तो भविष्य में उसके द्वारा सुख की कामनाओं से ही करती है।"

मन्थरक ने फिर भी पत्नी से सलाह किये बिना कुछ भी न करने का विचार प्रकट किया। घर पहुँचकर वह पत्नी से बोला— "आज मुझे एक देव मिला है। वह एक वरदान देने को उद्यत है। नाई की सलाह है कि राज्य मांग लिया जाय। तू बता कि कौन सी चीज़ मांगी जाये।"

पत्नी ने उत्तर दिया—"राज्य-शासन का काम बहुत कष्ट-प्रद है। सन्धि-विग्रह आदि से ही राजा को अवकाश नहीं मिलता। राजमुकुट प्रायः कांटों का ताज होता है। ऐसे राज्य से क्या अभिप्राय जो सुख न दे।"

मन्थरक ने कहा—"प्रिये ! तुम्हारी बात सच है, राजा राम को और राजा नल को भी राज्य-प्राप्ति के बाद कोई सुख नहीं मिला था। हमें भी कैसे मिल सकता है ? किन्तु प्रश्न यह है कि राज्य न मांगा जाय तो क्या मांगा जाये।"

मन्थरक-पत्नी ने उत्तर दिया—"तुम अकेले दो हाथों से जितना कपड़ा बुनते हो, उससे भी हमारा व्यय पूरा हो जाता है। यदि तुम्हारे हाथ दो की जगह चार हों और सिर भी एक की जगह दो हों तो कितना अच्छा हो। तब हमारे पास आज की अपेक्षा दुगना कपड़ा हो जायगा। इससे समाज में हमारा मान बढ़ेगा।"

मन्थरक को पत्नी की बात जच गई। समुद्रतट पर जाकर वह देव से बोला—"यदि आप वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दो कि मैं चार हाथ और दो सिर वाला हो जाऊँ।"

मन्थरक के कहने के साथ ही उसका मनोरथ पूरा हो गया। उसके दो सिर और चार हाथ हो गये। किन्तु इस बदली हालत में जब वह गाँव में आया तो लोगों ने उसे राक्षस समझ लिया, और राक्षस-राक्षस कहकर सब उसपर टूट पड़े।

× × ×

चक्रधर ने कहा—"बात तो सच है। पत्नी की सलाह न मानता, और मित्र की ही मानता तो उसकी जान बच जाती। सभी लोग आशारूपी पिशाचिनी से दबे हुए ऐसे काम कर जाते हैं, जो जगत में हास्यास्पद होते हैं, जैसे सोमशर्मा के पिता ने किया था।"

स्वर्णसिद्धि ने पूछा—"किस तरह ?"

तब, चक्रधर ने यह कथा सुनाई—

८.
शेख़चिल्ली न बनो

अनागतवतीं चिन्तामसम्भाव्यां करोति यः ।
स एव पांडुरः शेते सोमशर्मपिता यथा ॥

. . . .

हवाई क़िले मत बाँधो

. . . .

एक नगर में कोई कंजूस ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा से प्राप्त सत्तुओं में से थोड़े से खाकर शेष से एक घड़ा भर लिया था। उस घड़े को उसने रस्सी से बांधकर खूंटी पर लटका दिया और उसके नीचे पास ही खटिया डालकर उसपर लेटे-लेटे विचित्र सपने लेने लगा, और कल्पना के हवाई घोड़े दौड़ाने लगा।

उसने सोचा कि जब देश में अकाल पड़ेगा तो इन सत्तुओं का मूल्य १०० रुपये हो जायगा। उन सौ रुपयों से मैं दो बकरियां लूँगा। छः महीने में उन दो बकरियों से कई बकरियें बन जायंगी। उन्हें बेचकर एक गाय लूंगा। गौओं के बाद भैंसे लूंगा और फिर घोड़े ले लूंगा। घोड़ों को महंगे दामों में बेचकर मेरे पास बहुत

सा सोना हो जायगा। सोना बेचकर मैं बहुत बड़ा घर बनाऊँगा। मेरी सम्पत्ति को देखकर कोई भी ब्राह्मण अपनी सुरूपवती कन्या का विवाह मुझसे कर देगा। वह मेरी पत्नी बनेगी। उससे जो पुत्र होगा उसका नाम मैं सोमशर्मा रखूंगा। जब वह घुटनों के बल चलना सीख जायेगा तो मैं पुस्तक लेकर घुड़शाला के पीछे की दीवार पर बैठा हुआ उसकी बाल-लीलायें देखूंगा। उसके बाद सोमशर्मा मुझे देखकर मां की गोद से उतरेगा और मेरी ओर आयेगा तो मैं उसकी मां को क्रोध से कहूँगा—"अपने बच्चे को संभाल।" वह गृह-कार्य में व्यग्र होगी, इसलिये मेरा वचन न सुन सकेगी। तब मैं उठकर उसे पैर की ठोकर से मारूंगा। यह सोचते ही उसका पैर ठोकर मारने के लिये ऊपर उठा। वह ठोकर सत्तु-भरे घड़े को लगी। घड़ा चकनाचूर हो गया। कंजूस ब्राह्मण के स्वप्न भी साथ ही चकनाचूर हो गये।

× × ×

स्वर्णसिद्धि ने कहा - "यह बात तो सच है, किन्तु उसका भी क्या दोष; लोभवश सभी अपने कर्मों का फल नहीं देख पाते; और उनको वही फल मिलता है जो चन्द्र भूपति को मिला था।"

चक्रधर ने पूछा—"यह कैसे हुआ ?"

स्वर्णसिद्धि ने तब यह कथा सुनाई—

९.

लोभ बुद्धि पर परदा डाल देता है

'यो लौल्यात् कुरुते कर्म न चोदर्कमवेक्षते।
विडम्बनामवाप्नोति स यथा चन्द्रभूपतिः'

. . . .

बिना परिणाम सोचे चंचल वृत्ति से कार्य का
आरंभ करने वाला अपनी जग-हँसाई कराता है

. . . .

एक नगर के राजा चन्द्र के पुत्रों को बन्दरों से खेलने का व्यसन था। बन्दरों का सरदार भी बड़ा चतुर था। वह सब बन्दरों को नीतिशास्त्र पढ़ाया करता था। सब बन्दर उसकी आज्ञा का पालन करते थे। राजपुत्र भी उन बन्दरों के सरदार वानरराज को बहुत मानते थे।

उसी नगर के राजगृह में छोटे राजपुत्र के वाहन के लिये कई मेढे भी थे। उन में से एक मेढा बहुत लोभी था। वह जब जी चाहे तब रसोई में घुस कर सब कुछ खा लेता था। रसोइये उसे लकड़ी से मार कर बाहिर निकाल देते थे।

वानरराज ने जब यह कलह देखा तो वह चिन्तित हो गया।

उसने सोचा 'यह कलह किसी दिन सारे बन्दरसमाज के नाश का कारण हो जायगा। कारण यह कि जिस दिन कोई नौकर इस मेढे को जलती लकड़ी से मारेगा, उसी दिन यह मेढा घुड़साल में घुस कर आग लगा देगा। इससे कई घोड़े जल जायंगे। जलन के घावों को भरने के लिये बन्दरों की चर्बी की मांग पैदा होगी। तब, हम सब मारे जायंगे।'

इतनी दूर की बात सोचने के बाद उसने बन्दरों को सलाह दी कि वे अभी से राजगृह का त्याग कर दें। किन्तु उस समय बन्दरों ने उसकी बात को नहीं सुना। राजगृह में उन्हें मीठे-मीठे फल मिलते थे। उन्हें छोड़ कर वे कैसे जाते! उन्होंने वानरराज से कहा कि "बुढ़ापे के कारण तुम्हारी बुद्धि मन्द पड़ गई है। हम राजपुत्र के प्रेम-व्यवहार और अमृतसमान मीठे फलों को छोड़कर जंगल में नहीं जायंगे।"

वानरराज ने आंखों में आंसू भर कर कहा—'मूर्खो! तुम इस लोभ का परिणाम नहीं जानते। यह सुख तुम्हें बहुत महंगा पड़ेगा।" यह कहकर वानरराज स्वयं राजगृह छोड़कर वन में चला गया।

उसके जाने के बाद एक दिन वही बात हो गई जिस से वानर-राज ने वानरों को सावधान किया था। एक लोभी मेढा जब रसोई में गया तो नौकर ने जलती लकड़ी उस पर फैंकी। मेढे के बाल जलने लगे। वहाँ से भाग कर वह अश्वशाला में घुस गया। उसकी चिनगारियों से अश्वशाला भी जल गई। कुछ घोड़े आग

से जल कर वहीं मर गये। कुछ रस्सी तुड़ा कर शाला से भाग गये।

तब, राजा ने पशुचिकित्सा में कुशल वैद्यों को बुलाया और उन्हें आग से जले घोड़ों की चिकित्सा करने के लिये कहा। वैद्यों ने आयुर्वेदशास्त्र देख कर सलाह दी कि जले घावों पर बन्दरों की चर्बी की मरहम बना कर लगाई जाये। राजा ने मरहम बनाने के लिये सब बन्दरों को मारने की आज्ञा दी। सिपाहियों ने सब बन्दरों को पकड़ कर लाठियों और पत्थरों से मार दिया।

वानरराज को जब अपने वंश-क्षय का समाचार मिला तो वह बहुत दुःखी हुआ। उसके मन में राजा से बदला लेने की आग भड़क उठी। दिन-रात वह इसी चिन्ता में घुलने लगा। आखिर उसे एक वन में ऐसा तालाब मिला जिसके किनारे मनुष्यों के पद-चिन्ह थे। उन चिन्हों से मालूम होता था कि इस तालाब में जितने मनुष्य गये, सब मर गये; कोई वापिस नहीं आया। वह समझ गया कि यहाँ अवश्य कोई नरभक्षी मगरमच्छ है। उसका पता लगाने के लिये उसने एक उपाय किया। कमल नाल लेकर उसका एक सिरा उसने तालाब में डाला और दूसरे सिरे को मुख में लगा कर पानी पीना शुरू कर दिया।

थोड़ी देर में उसके सामने ही तालाब में से एक कंठहार धारण किये हुए मगरमच्छ निकला। उसने कहा—"इस तालाब में पानी पीने के लिये आ कर कोई वापिस नहीं गया, तूने कमल नाल द्वारा पानी पीने का उपाय करके विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया है। मैं तेरी प्रतिभा पर प्रसन्न हूँ। तू जो वर मांगेगा, मैं

दूंगा । कोई सा एक वर मांग ले ।"

वानरराज ने पूछा—"मगरराज ! तुम्हारी भक्षण-शक्ति कितनी है ?"

मगरराज—"जल में मैं सैंकड़ों, सहस्रों पशु या मनुष्यों को खा सकता हूँ; भूमि पर एक गीदड़ भी नहीं ।"

वानरराज—"एक राजा से मेरा वैर है । यदि तुम यह कंठहार मुझे दे दो तो मैं उसके सारे परिवार को तालाब में लाकर तुम्हारा भोजन बना सकता हूँ ।"

मगरराज ने कंठहार दे दिया । वानरराज कंठहार पहिनकर राजा के महल में चला गया । उस कंठहार की चमक-दमक से सारा राजमहल जगमगा उठा । राजा ने जब वह कंठहार देखा तो पूछा—"वानरराज ! यह कंठहार तुम्हें कहाँ मिला ?"

वानरराज—"राजन् ! यहाँ से दूर वन में एक तालाब है । वहाँ रविवार के दिन सुबह के समय जो गोता लगायगा उसे वह कंठहार मिल जायगा ।"

राजा ने इच्छा प्रगट की कि वह भी समस्त परिवार तथा दरबारियों समेत उस तालाब में जाकर स्नान करेगा, जिस से सब को एक-एक कंठहार की प्राप्ति हो जायगी ।"

निश्चित दिन राजा समेत सभी लोग वानरराज के साथ तालाब पर पहुँच गये । किसी को यह न सूझा कि ऐसा कभी संभव नहीं हो सकता । तृष्णा सबको अन्धा बना देती है । सैंकड़ों वाला हज़ारों चाहता है; हज़ारों वाला लाखों की तृष्णा

रखता है; लक्षपति करोड़पति बनने की धुन में लगा रहता है। मनुष्य का शरीर जराजीर्ण हो जाता है, लेकिन तृष्णा सदा जवान रहती है। राजा की तृष्णा भी उसे उसके काल के मुख तक ले आई।

सुबह होने पर सब लोग जलाशय में प्रवेश करने को तैयार हुए। वानरराज ने राजा से कहा—"आप थोड़ा ठहर जायं, पहले और लोगों को कंठहार लेने दीजिये। आप मेरे साथ जलाशय में प्रवेश कीजियेगा। हम ऐसे स्थान पर प्रवेश करेंगे जहां सबसे अधिक कंठहार मिलेंगे।"

जितने लोग जलाशय में गये, सब डूब गये; कोई ऊपर न आया। उन्हें देरी होती देख राजा ने चिन्तित होकर वानरराज की ओर देखा। वानरराज तुरन्त वृक्ष की ऊँची शाखा पर चढ़कर बोला—'महाराज! तुम्हारे सब बन्धु-बान्धवों को जलाशय में बैठे राक्षस ने खा लिया है। तुम ने मेरे कुल का नाश किया था; मैंने तुम्हारा कुल नष्ट कर दिया। मुझे बदला लेना था, ले लिया। जाओ, राजमहल को वापिस चले जाओ।"

राजा क्रोध से पागल हो रहा था, किन्तु अब कोई उपाय नहीं था। वानरराज ने सामान्य नीति का पालन किया था। हिंसा का उत्तर प्रतिहिंसा से और दुष्टता का उत्तर दुष्टता से देना ही व्यावहारिक नीति है।

राजा के वापिस जाने के बाद मगरराज तालाब से निकला। उसने वानरराज की बुद्धिमत्ता की बहुत प्रशंसा की।

× × ×

कहानी कहने के बाद स्वर्णसिद्धि ने चक्रधर से घर वापिस जाने की आज्ञा माँगी। चक्रधर ने कहा—"मुझे विपत्ति में छोड़ कर तुम कैसे जा सकते हो ? मित्रों का क्या यही कर्त्तव्य है ? इतने निष्ठुर बनोगे तो नरक में जाओगे।"

स्वर्णसिद्धि ने उत्तर दिया—"तुम्हें कष्ट से छुड़ाना मेरी शक्ति से बाहिर है। बल्कि मुझे भय है कि कहीं तुम्हारे संसर्ग से मैं भी इसी कष्ट से पीड़ित न हो जाऊँ। अब मेरा यहाँ से दूर भाग जाना ही ठीक है। नहीं तो मेरी अवस्था भी विकाल राक्षस के पँजे में फँसे वानर की सी हो जायगी।"

चक्रधर ने पूछा—"किस राक्षस के, कैसे ?"

स्वर्णसिद्धि ने तब राक्षस और वानर की यह कथा सुनाई—

१०.

भय का भूत

'यः पलैति स जीवति'।

. . . .

भागने वाला ही जीवित रहता है।

. . . .

एक नगर में भद्रसेन नाम का राजा रहता था। उसकी कन्या रत्नवती बहुत रूपवती थी। उसे हर समय यही डर रहता था कि कोई राक्षस उसका अपहरण न करले। उसके महल के चारों ओर पहरा रहता था, फिर भी वह सदा डर से कांपती रहती थी। रात के समय उसका डर और भी बढ़ जाता था।

एक रात एक राक्षस पहरेदारों की नज़र बचाकर रत्नवती के घर में घुस गया। घर के एक अंधेरे कोने में जब वह छिपा हुआ था तो उसने सुना कि रत्नवती अपनी एक सहेली से कह रही है "यह दुष्ट विकाल मुझे हर समय परेशान करता है, इसका कोई उपाय कर।"

राजकुमारी के मुख से यह सुनकर राक्षस ने सोचा कि अवश्य ही विकाल नाम का कोई दूसरा राक्षस होगा, जिससे राजकुमारी

इतनी डरती है। किसी तरह यह जानना चाहिये कि वह कैसा है? कितना बलशाली है ?

यह सोचकर वह घोड़े का रूप धारण करके अश्वशाला में जा छिपा।

उसी रात कुछ देर बाद एक चोर उस राज-महल में आया। वह वहाँ घोड़ों की चोरी के लिए ही आया था। अश्वशाला में जा कर उसने घोड़ों की देखभाल की और अश्वरूपी राक्षस को ही सबसे सुन्दर घोड़ा देखकर वह उसकी पीठ पर चढ़ गया। अश्वरूपी राक्षस ने समझा कि अवश्यमेव यह व्यक्ति ही विकाल राक्षस है और मुझे पहचान कर मेरी हत्या के लिए ही यह मेरी पीठ पर चढ़ा है। किन्तु अब कोई चारा नहीं था। उसके मुख में लगाम पड़ चुकी थी। चोर के हाथ में चाबुक थी। चाबुक लगते ही वह भाग खड़ा हुआ।

कुछ दूर जाकर चोर ने उसे ठहराने के लिए लगाम खींची, लेकिन घोड़ा भागता ही गया। उसका वेग कम होने के स्थान पर बढ़ता ही गया। तब, चोर के मन में शंका हुई, यह घोड़ा नहीं बल्कि घोड़े की सूरत में कोई राक्षस है, जो मुझे मारना चाहता है। किसी ऊबड़-खाबड़ जगह पर ले जाकर यह मुझे पटक देगा। मेरी हड्डी-पसली टूट जायेगी।

यह सोच ही रहा था कि सामने वटवृक्ष की एक शाखा आई। घोड़ा उसके नीचे से गुजरा। चोर ने घोड़े से बचने का उपाय देखकर शाखा को दोनों हाथों से पकड़ लिया। घोड़ा नीचे से गुजर

गया, चोर वृक्ष की शाखा से लटक कर बच गया।

उसी वृक्ष पर अश्वरूपी राक्षस का एक मित्र बन्दर रहता था। उसने डर से भागते हुये अश्वरूपी राक्षस को बुलाकर कहा—

"मित्र! डरते क्यों हो? यह कोई राक्षस नहीं, बल्कि मामूली मनुष्य है। तुम चाहो तो इसे एक क्षण में खाकर हज़म कर लो।"

चोर को बन्दर पर बड़ा क्रोध आ रहा था। बन्दर उससे दूर ऊँची शाखा पर बैठा हुआ था। किन्तु उसकी लम्बी पूंछ चोर के मुख के सामने ही लटक रही थी। चोर ने क्रोधवश उसकी पूंछ को अपने दांतों में भींच कर चबाना शुरू कर दिया। बन्दर को पीड़ा तो बहुत हुई लेकिन मित्र राक्षस के सामने चोर की शक्ति को कम बताने के लिये वह वहाँ बैठा ही रहा। फिर भी, उसके चेहरे पर पीड़ा की छाया साफ नज़र आ रही थी। उसे देखकर राक्षस ने कहा—

"मित्र! चाहे तुम कुछ ही कहो, किन्तु तुम्हारा चेहरा कह रहा है कि तुम विकाल राक्षस के पंजे में आ गये हो।"

यह कह कर वह भाग गया।

× × ×

यह कहानी सुनाकर स्वर्णसिद्धि ने चक्रधर से फिर घर वापिस जाने की आज्ञा मांगी और उसे लोभ-वृक्ष का फल खाने के लिए वहीं ठहरने का उलाहना दिया।

चक्रधर ने कहा —'मित्र! उपालंभ देने से क्या लाभ? यह

तो दैव का संयोग है। अन्धे, कुबड़े और विकृत शरीर व्यक्ति भी संयोग से जन्म लेते हैं, उनके साथ भी न्याय होता है। उनके उद्धार का भी समय आता है।"

एक राजा के घर विकृत कन्या हुई थी। दरबारियों ने राजा से निवेदन किया कि—"महाराज! ब्राह्मणों को बुलाकर इसके उद्धार का प्रश्न कीजिये।" मनुष्य को सदा जिज्ञासु रहना चाहिये; और प्रश्न पूछते रहना चाहिये। एक बार राक्षसेन्द्र के पंजे में पड़ा हुआ ब्राह्मण केवल प्रश्न के बल पर छूट गया था। प्रश्न की बड़ी महिमा है।

राजा ने पूछा—"यह कैसे?"

तब दरबारियों ने निम्न कथा सुनाई—

११.

जिज्ञासु बनो

"पृच्छकेन सदा भाव्यं पुरुषेण विजानता"

. . . .

मनुष्य को सदा प्रश्नशील, जिज्ञासु रहना चाहिये

. . . .

एक जङ्गल में चंडकर्मा नाम का राक्षस रहता था। जङ्गल में घूमते-घूमते उसके हाथ एक दिन एक ब्राह्मण आ गया।

वह राक्षस ब्राह्मण के कन्धे पर बैठ गया। ब्राह्मण के प्रश्न करने पर वह बोला—"ब्राह्मण! मैंने व्रत लिया हुआ है। गीले पैरों से मैं ज़मीन को नहीं छू सकता। इसीलिए तेरे कन्धों पर बैठा हूँ।"

थोड़ी दूर पर जलाशय था। जलाशय में स्नान के लिये जाते हुए राक्षस ने ब्राह्मण को सावधान कर दिया कि—"जब तक मैं स्नान करता हूँ, तू यहीं बैठकर मेरी प्रतीक्षा कर।" राक्षस की इच्छा थी कि वह स्नान के बाद ब्राह्मण का वध करके उसे खा जायगा। ब्राह्मण को भी इसका सन्देह हो गया था। अतः ब्राह्मण अवसर पाकर वहाँ से भाग निकला। उसे मालूम हो चुका था कि राक्षस

गीले पैरों से ज़मीन नहीं छू सकता, इसलिये वह उसका पीछा नहीं कर सकेगा।

× × ×

ब्राह्मण यदि राक्षस से प्रश्न न करता तो उसे यह भेद कभी मालूम न होता। अतः मनुष्य को प्रश्न करने से कभी चूकना नहीं चाहिये। प्रश्न करने की आदत अनेक बार उसकी जीवन-रक्षा कर देती है।

स्वर्णसिद्धि ने कहानी सुनकर कहा—"यह तो ठीक ही है। दैव अनुकूल हो तो सब काम स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। फिर भी पुरुष को श्रेष्ठ मित्रों के वचनों का पालन करना ही चाहिये। स्वेच्छाचार बुरा है। मित्रों की सलाह से मिल-जुलकर और एक दूसरे का भला चाहते हुए ही सब काम करने चाहियें। जो लोग एक दूसरे का भला नहीं चाहते और स्वेच्छया सब काम करते हैं, उनकी दुर्गति वैसी ही होती है जैसी स्वेच्छाचारी भारण्ड पक्षी की हुई थी।

चक्रधर ने पूछा—"वह कैसे ?"

स्वर्णसिद्धि ने तब यह कथा सुनाई—

१२.

मिलकर काम करो

"असंहता विनश्यन्ति"

. . . .

परस्पर मिल-जुलकर काम न करने वाले
नष्ट हो जाते हैं।

. . . .

एक तालाब में भारण्ड नाम का एक विचित्र पक्षी रहता था। इसके मुख दो थे, किन्तु पेट एक ही था। एक दिन समुद्र के किनारे घूमते हुए उसे एक अमृतसमान मधुर फल मिला। यह फल समुद्र की लहरों ने किनारे पर फेंक दिया था। उसे खाते हुए एक मुख बोला—"ओः, कितना मीठा है यह फल! आज तक मैंने अनेक फल खाये, लेकिन इतना स्वादु कोई नहीं था। न जाने किस अमृत बेल का यह फल है।"

दूसरा मुख उससे वंचित रह गया था। उसने भी जब उसकी महिमा सुनी तो पहले मुख से कहा—"मुझे भी थोड़ा सा चखने को दे दे।"

पहला मुख हँसकर बोला—"तुझे क्या करना है? हमारा

पेट तो एक ही है, उसमें वह चला ही गया है। तृप्ति तो हो ही गई है।"

यह कहने के बाद उसने शेष फल अपनी प्रिया को दे दिया। उसे खाकर उसकी प्रेयसी बहुत प्रसन्न हुई।

दूसरा मुख उसी दिन से विरक्त हो गया और इस तिरस्कार का बदला लेने के उपाय सोचने लगा।

अन्त में, एक दिन उसे एक उपाय सूझ गया। वह कहीं से एक विषफल ले आया। प्रथम मुख को दिखाते हुए उसने कहा—"देख! यह विषफल मुझे मिला है। मैं इसे खाने लगा हूँ।"

प्रथम मुख ने रोकते हुए आग्रह किया—"मूर्ख! ऐसा मत कर, इसके खाने से हम दोनों मर जायंगे।"

द्वितीय मुख ने प्रथम मुख के निषेध करते-करते, अपने अपमान का बदला लेने के लिये विषफल खा लिया। परिणाम यह हुआ कि दोनों मुखों वाला पक्षी मर गया।

× × ×

चक्रधर इस कहानी का अभिप्राय समझ कर स्वर्णसिद्धि से बोला—"अच्छी बात है। मेरे पापों का फल तुझे नहीं भोगना चाहिये, तू अपने घर लौट जा। किन्तु, अकेले मत जाना। संसार में कुछ काम ऐसे हैं, जो एकाकी नहीं करने चाहियें। अकेले स्वादु भोजन नहीं खाना चाहिये, सोने वालों के बीच अकेले जागना ठीक नहीं, मार्ग पर अकेले चलना संकटापन्न है; जटिल विषयों पर अकेले सोचना नहीं चाहिये। मार्ग में कोई भी

सहायक हो तो वह जीवन-रक्षा कर सकता है; जैसे कर्कट ने सांप को मार कर प्राण-रक्षा की थी।"

स्वर्णसिद्धि ने कहा—"कैसे?"

चक्रधर ने यह कहानी कही—

१३.

मार्ग का साथी

'...नैकाकिना गन्तव्यम्'

. . . .

'अकेले यात्रा मत करो'

. . . .

एक दिन ब्रह्मदत्त नाम का एक ब्राह्मण अपने गांव से प्रस्थान करने लगा। उसकी माता ने कहा—"पुत्र! कोई न कोई साथी रास्ते के लिये खोज लो। अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिये।"

ब्रह्मदत्त ने उत्तर दिया—"डरो मत मां! इस मार्ग में कोई उपद्रव नहीं है। मुझे जल्दी जाना है, इतने में साथी नहीं मिलेगा। मेरे पास साथी खोजने का समय नहीं है।" मां ने कुछ और उपाय न देख पड़ोस से एक 'कर्कट' ले लिया और अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को कहा कि "यदि तुझे जाना ही है तो इस कर्कट को भी साथ लेता जा। यह तुझे बहुत सहायता देगा।"

ब्रह्मदत्त ने माता का कहना मान कर्कट को ही साथी बना लिया; उसे कपूर की डिबिया में रखकर यात्रा के लिये चल दिया।

थोड़ी दूर जाकर जब वह थक गया और गर्मी बहुत सताने लगी तो उसने मार्ग के एक वृक्ष की छाया में विश्राम लिया। थका हुआ तो था ही, नींद आगई। उसी वृक्ष के बिल में एक सांप रहता था। वह जब ब्रह्मदत्त के पास आया तो उसे कपूर की गन्ध आगई। कपूर की गन्ध सांप को प्रिय होती है। सांप ने ब्रह्मदत्त के कपड़ों में से कपूर की डिबिया खोज ली, लेकिन जब उसे खाने लगा, कर्कट ने सांप को मार दिया।

ब्रह्मदत्त जब जागा तो देखा कि पास ही काला सांप मरा पड़ा है। उसके पास कपूर की डिबिया भी पड़ी थी। वह समझ गया कि यह काम कर्कट का ही है। प्रसन्न होकर वह सोचने लगा—"मां सच कहती थी कि पुरुष को यात्रा में कभी एकाकी नहीं जाना चाहिये। मैंने श्रद्धा-पूर्वक मां का वचन पूरा किया, इसीलिये काला सांप मुझे काट नहीं सका; अन्यथा मैं मर जाता।"

× × ×

इस कहानी के बाद स्वर्णसिद्धि अपने मित्र चक्रधर को वहीं छोड़कर अपने घर वापिस आ गया।

❀ पंचमतन्त्र समाप्त ❀

॥ इति ॥